संस्थापक :
श्रीयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 42; अंक : 4
जुलाई, 2009

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति॥

–श्वेताश्वतरोपनिषद् (20)

जब मनुष्यगण आकाश को चमड़े की भाँति लपेट सकेंगे तब उन परमदेव परमात्मा को बिना जाने भी दुःख समुदाय का अन्त हो जायेगा।

• • •

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥

–मुण्डकोपनिषद् 2/4

यहाँ ओंकार ही धनुष है, आत्मा ही बाण है और परब्रह्म परमेश्वर ही उसका लक्ष्य कहा जाता है। वह प्रमादरहित मनुष्य द्वारा ही बींधा जाने योग्य है। अतः उसे बेधकर बाण की तरह उस लक्ष्य में तन्मय हो जाना चाहिए।

• • •

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति॥

शास्त्र और आचार्य के द्वारा सुसंस्कृत मन से ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है। इस ब्रह्म में अणुमात्र भी भेद नहीं है। जो ब्रह्म में भेद या नानापन देखता है, वह बार–बार मृत्यु को प्राप्त होता है।

• • •

घटावभासको भानुर्घटनाशे न नश्यति।
देहावभासकः साक्षी देहनाशे न नश्यति॥

(आत्मप्रबोध)

जैसे घड़े का प्रकाशक सूर्य घड़े के नाश हो जाने पर नष्ट नहीं होता, वैसे ही देह का प्रकाशक साक्षी (आत्मा) देह के नाश से नाश को प्राप्त नहीं होता।

• • •

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 42 अंक : 4

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै–
र्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः।।

ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र रुद्र और मरुद्गण जिनका दिव्य स्तोत्रों द्वारा स्तवन करते हैं, सामगान करने वाले लोग अंग, पद, क्रम और उपनिषदों के सहित वेदों द्वारा जिनका गान करते हैं, ध्यानमग्न एवं तल्लीन चित्त से योगी जिनका साक्षात्कार करते हैं और जिनका पार सुर और असुर कोई भी नहीं पाते, इन भगवान विष्णु को नमस्कार है।

जुलाई 2009

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

नवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज — 3
2. सम्पादकीय — 8
3. माँ–बाप की सेवा –अंशुमान देव मालवीय — 11
4. कथायें जो मेरे मन को लुभाती हैं –डा. विजय सिंह — 13
5. गुरु भेंट –मोती राम गर्ग — 17
6. प्राणायाम से संस्कार शुद्धि –डा. जे. पी. शर्मा — 18
7. खोज निकाली श्री विष्णु की शेष शैया –डा. जे.पी. शर्मा — 23
8. सद्गुरु परमशक्ति के साकार विग्रह–अवनीश भटनागर — 24
9. कृपा लीला –जगदीश राय बंसल — 29
10. साधकों के लिए –रामेश्वर खण्डेलवाल — 33
11. हमारा मन–कल्याणकर्ता एवं विनाशकर्ता –द्वारका प्रसाद शर्मा — 37

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 130.00
द्विवार्षिक	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

सत्संग एवं सिद्धयोग

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सत्संग शब्द का क्या अर्थ है, इसके विषय में सर्वसाधारण में गलत धारणा है कि जहाँ पर दस–बीस व्यक्ति मिलकर किसी भी प्रकार का भगवत् गुणानुवाद गायन, भजन–संकीर्तन, कथा–प्रसंग आदि करते हैं, एतावत् मात्र क्रिया कलाप को ही वे सत्संग कहा करते हैं। वैसे हमारे शास्त्रों में सत्संग की महिमा बहुत प्रकार से वर्णित है। जगदात्मा अखिल लोक पावन श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भागवत् के ग्यारहवें स्कन्ध में सत्संग की महिमा को बताते हुए दो श्लोकों में इस प्रकार कहा है:–

न रोधयति मां योगो, न सांख्य धर्म एव च।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो, नेष्टा पूर्तं न दक्षिणा।।
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि, तीर्थानि नियमा यमाः।
यथावरुंधे सत्संगः, सर्व संगापहो हि माम्।।

भगवान ने पहले तो 'नरोधयतिमाम् योगः' अर्थात् – योग मुझे खुश नहीं कर सकता, ये शब्द कह कर अपनी प्राप्ति के साधनों में सत्संग की अपेक्षा योग को भी उत्कृष्ट साधन नहीं माना। पाठकगण अपने मन में यह विचार करते होंगे कि पूर्णयोग योगेश्वर अखिल आत्मा भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने योग को अपने मुख से अपेक्षाकृत अपनी प्राप्ति का गौण साधन मान लिया। पर यह बात यथार्थ नहीं है। सत्संग किस वस्तु का नाम है, यह अभी कुछ पंक्तियों के बाद ही हम समझा देना चाहते हैं कि वस्तुतः साधक को सत्संग के द्वारा ही अपने ध्येय भूतयोग की प्राप्ति हुआ करती है। भगवान का यह कहना 'न रोधयति माम् योगः' केवल मात्र साधनयोग का ही संकेत है। भक्त लोग भगवान का गुणानुवाद करते हुए प्रायः गाया करते हैं:–

नाहं वसामि वैकुण्ठे, योगिनाम् हृदये न च।
मद्भक्ताः यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठामि नारद।।

अर्थात्– मैं न वैकुण्ठ में रहता हूँ और न ही योगियों के हृदय में रहता हूँ, किन्तु जहाँ पर भक्त लोग मेरा गायन किया करते हैं वहीं मैं रहा करता हूँ। इसका अभिप्राय यह नहीं समझना चाहिए कि भगवान ने भक्तों के अधीन होकर अपने दिव्यलोक वैकुण्ठ को एवं योगियों के हृदय को छोड़ दिया। यथार्थ में तो उनके रहने का स्थान उनका वैकुण्ठ लोक एवं हमेशा समाधिस्थ

रहने वाले योगियों का हृदय ही है, किन्तु भक्तों के गायन में भी मेरा उत्कृष्ट आकर्षण है और इनके प्रेम एवं हृदय के भाव से परिपूर्ण उनके गायन में भी मैं जाया करता हूँ यही इसका सांकेतिक अर्थ है। वास्तव में तो योगियों का हृदय एवं बैकुण्ठ ही उनके निवास का स्थान है। इसी प्रकार से इस श्लोक में उनकी प्राप्ति के जितने साधनों का वर्णन शास्त्रों में किया गया है उन सबको गौण बतलाकर सत्संग की ही प्रमुखता बतलायी गयी है। सांख्य शास्त्र का विवेचनात्मक सिद्धान्त भगवान को सत्संग की अपेक्षा प्रिय नहीं है। थोड़ी देर के लिए हम विचार करें। इन दो श्लोकों के अन्दर जगदात्मा श्रीकृष्ण ने प्रायः अपनी प्राप्ति के सभी साधनों को न के बराबर गौण बताकर सत्संग की प्रधानता का वर्णन किया है। इन श्लोकों के पहले चरण के अन्दर 'न रोधयति माम् योगः' कह कर योग का गौण रूप से वर्णन किया है। वैसे तो भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के जीवन चरित्र को हम उठाकर पढ़ें तो उनका पूरा जीवन योगमय है और उन्होंने अपने प्रत्येक लीला–चरित्र से संसार को योग का पाठ पढ़ाया है। उनके जीवन की एक–एक घटना यौगिक ऐश्वर्य से परिपूर्ण है। श्रीमद्‌भागवत् के इन दो श्लोकों के अतिरिक्त और भी जितने उन्होंने उपदेश दिये वे सब योग–परक हैं और समझने वाले विद्वज्जनों के लिए ये दो श्लोक ही योग की पूर्णतम् महत्ता को बतलाते हैं। भगवान ने गीता में अर्जुन को योग की महत्ता बतलाते हुए स्पष्ट शब्दों में आदेश दिया है कि :–

तपस्विभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपिमतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी, तस्माद्योगी भवार्जुन।।

अर्थात्–हे अर्जुन! योगी का दर्जा ज्ञानी, तपस्वी एवं कर्मकाण्डी सभी की अपेक्षा परमोत्कृष्ट है। इसलिए तू योगी बन।

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव, दानेषु यत् पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा, योगी परम् स्थानमुपैति चाद्यम्।।

अर्थात्–वेद में, यज्ञों, तप में, दान आदि में जो पुण्य फल कहा है योगी उन सबको पार करके आदि परम स्थान को प्राप्त हुआ करता है। इसके अतिरिक्त जहाँ पर सांख्य योग और योग का वर्णन गीता के अन्दर मिलता है वहाँ पर भी भगवान ने योग की महिमा का उत्कृष्टता के साथ वर्णन किया है। भगवान ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया है:–

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योग युक्तो मुनिर्ब्रह्म, न चिरेणाधिगच्छति।।

–'गीता'

अर्थात्–हे अर्जुन! बिना योग के सन्यास को प्राप्त करना बहुत कठिन है और योगयुक्त मुनि ब्रह्म को बहुत जल्दी पा जाता है। इसलिए योग ही परम श्रेष्ठ है। अतः हे अर्जुन! तुम्हें योग प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए।

दूसरा साधन आत्मस्वरूप की प्राप्ति के लिए सांख्य योग का अभ्यास है। इसका भी संसार में बहुत बड़ा प्रचार है, किन्तु भगवान ने सांख्य शास्त्र के इस विवेकात्मक सिद्धान्त को भी सत्संग की अपेक्षा नाम मात्र के बराबर गौण बतला दिया।

ईश्वर प्राप्ति का तीसरा साधन स्वाध्याय है। भगवान पतंजलि देव जी अपने योगदर्शन में स्पष्ट रूप से कहते हैं कि–

'स्वाध्यायदिष्ट देवता सम्प्रयोगः'

इस सूत्र का भाष्य करते हुए श्री व्यासदेव जी निम्नांकित पंक्ति लिखते हैं:–

देवा ऋषयः सिद्धाश्च स्वाध्यायशीलस्य दर्शनं यच्छन्ति कार्यं चास्य वर्तन्त इति।

ऋषि, मुनि एवं देवता लोग स्वाध्यायशील व्यक्ति की आँखों के सामने जाया करते हैं और उनके काम कर दिया करते हैं। हमारे शास्त्र इन्हें स्पष्ट निर्देश करते हैं:–

स्वाध्यायाद् योगमासीत, योगात्स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याय योग सम्पत्या परमात्मा प्रकाशते।।

अर्थात्– मनुष्य को चाहिए स्वाध्याय के बल से इष्टदेव का साक्षात्कार कर ले। स्वाध्याय से योग की प्राप्ति हो और योग से स्वाध्याय का मनन करे। इस प्रकार स्वाध्याय और योग की सम्पति के द्वारा परमात्मा का प्रकाश हो जाता है; किन्तु जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने यहाँ पर स्वाध्याय की साधना को भी सत्संग की अपेक्षा न के बराबर माना है।

चौथा साधन हमारे शास्त्र बतलाते हैं–'तप'। ब्रह्मचर्य और तप के द्वारा देवताओं ने मौत को जीत लिया।

तप से परमात्मा पहचाना जाता है। तप एवं स्वाध्याय के द्वारा ही ध्रुव आदि ने ईश्वर का साक्षात्कार किया, किन्तु भगवान ने स्वाध्याय की उत्कृष्ट महिमा बतलाते हुए पूर्वोक्त दोनों श्लोकों में यह कहा है कि तप भी उनको रिझाने का उत्कृष्ट साधन नहीं है। पाँचवा–**त्याग** को भी अपनी प्राप्ति का साधन नाममात्र के बराबर ही दिखलाया है। वैसे श्रीमद्‌भगवत्‌गीता में **त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्**:–

त्याग से शाश्वत शान्ति को प्राप्त कर लेता है, यह कहकर के त्याग को भी अपनी प्राप्ति का एक साधन माना है। किन्तु यहाँ पर त्याग की अपेक्षा सत्संग की उत्कृष्टता को समझाया है।

छठा स्थान **इष्टा–पूर्त और दक्षिणा** का है। इष्टा–पूर्त और दक्षिणा का अर्थ है–कुएँ, बावड़ी, तालाब आदि बनवाना जिनके द्वारा परम पुण्य की प्राप्ति हुआ करती है। जगदात्मा ने इन सभी साधनों को बिल्कुल न के बराबर माना है। इसके अतिरिक्त बड़े–बड़े व्रतों को करना, वेद–पाठ का सुनना, यज्ञ करना। यह सब सत्संग की अपेक्षा गौणरूप रूप से वर्णित है।

इस सबका कारण क्या है? क्या योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण कभी अपनी प्राप्ति के सभी साधनों को इसी प्रकार से निरोधात्मक रूप से कह सकते हैं? सत्संग की अपेक्षा उन्होंने साधना

व अभ्यास रखने वाली श्रेणी को बहुत ही गौण रूप से कहकर सत्संग की उत्कृष्टता बतलायी है। वस्तुतः ठीक ढंग से विचार करके देखा जाय तो 'सत्संग' शब्द का अर्थ ही योग है। जिस प्रकार से योगदर्शन में यम–नियम आदि अष्टांग योग के साधनों को योग की बहिरंग साधना कहकर उनका दर्जा गौण रख दिया है। इसी प्रकार से परमात्मा की प्राप्ति के लिये योग के अतिरिक्त और भी जितने साधन हैं वे सब ईश्वर की प्राप्ति के साधनभूत हैं और साधन मनुष्य के पुरूषार्थ से ही उपलब्ध हुआ करते हैं। साधन करता हुआ मनुष्य परमात्मा को पा जाता है। इसमें कोई शंका की बात नहीं, किन्तु कोई पुण्यात्मा जीव अपनी विविध प्रकार की साधनाओं से महान पुण्य एकत्र करके यदि 'सिद्धयोग' का विद्यार्थी बन जाता है और सत्पुरूषों का संग प्राप्त कर लेता है तब यह साधना उपरोक्त साधनों की अपेक्षा बहुत ही परमोत्कृष्ट है क्योंकि सत्संग शब्द का अर्थ है:–

सतां महतां सत्पुरूषाणां संगः।

अर्थात्–सत्पुरूषों का संग ही सत्संग है। सत्पुरूषों के संग से साधक हर समय शक्ति ग्रहण करता रहता है। वैसे तो संसार का हर प्राणी हर प्राणी से शक्ति प्राप्त करता रहता है किन्तु शक्ति दे वही सकता है जिसने अपने अन्दर शक्ति का संचय पूर्णरूपेण कर लिया है। एक व्यक्ति किसी को आँख से देखता है तो वह आँखों के द्वारा अपने दर्शनीय भूत व्यक्ति पर शक्तिपात करता है। इसके अतिरिक्त यदि योगी वाणी से कोई शब्द कहता है, तो वह वाणी के द्वारा शक्तिपात करता है। किसी का स्पर्श करता है तो वह स्पर्श के द्वारा शक्तिपात करता है। हमारे पाठकों ने अच्छी प्रकार से अनुभव किया होगा कि संसार में कोई दुःखी प्राणी अपने दुःख से आक्रान्त होकर चिल्लाता है, रोता है तो उसको सान्त्वना देने के लिए उसके बड़े–बूढ़े उसके पास जाते हैं और उसके सिर पर कर–स्पर्श करते हैं। उनके प्यार व कर–स्पर्श से वह व्यक्ति शान्ति का अनुभव करता है। यह एक प्रकार का शक्ति का ही प्रभाव होता है। जिसकी जितनी शक्ति बढ़ी होती है उतना ही वह मनुष्य दूसरों को शक्ति दे सकता है। यह तो लौकिक प्रवाह है। लोक में हर व्यक्ति जब इस प्रकार से शक्ति प्राप्त कर लेते हैं तो जो लोग महापुरूषों के संग में रहने वाले हैं वे लोग कितनी शक्ति को ग्रहण करते रहते होंगे? इसका कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता। क्योंकि महापुरुष पूर्णरूपेण सिद्ध हुआ करते हैं और सभी प्रकार की शक्तियों से हर समय सम्पन्न रहा करते हैं। इसलिए उनकी हर क्रिया से हर समय शक्तिपात होता रहता है। जो जन–साधारण के कल्याण का बहुत बड़ा साधन बनता है। बिना शक्तिपात के किसी का पूर्णरूपेण अभ्युत्थान होना असम्भव सी बात है। उपनिषदों में यह स्पष्ट उल्लेख है:–

देहान्ते ज्ञानिभिः पुण्यात्पापाच्च फलमाप्यते।
इदृशं तु भवेन्तत्तमुक्त्वा ज्ञानी पुनर्भवेत्।।
पश्चात्पुण्येन लभते, सिद्धेन सह सङ्गतिम्।
ततः सिद्धस्य कृपया, योगी भवति नान्यथा।।

अर्थात्–शरीर छूट जाने के बाद योग रहित शाब्दिक ज्ञानियों को भी पाप–पुण्य का फल भोगना पड़ता है और इस प्रकार के पाप–पुण्य के संस्कारों को भोगकर ज्ञानी लोग पुनः संसार में जन्म लिया करते हैं और उसके बाद पुण्य के प्रभाव से इन लोगों को सिद्ध गुरु की संगति प्राप्त होती है। सिद्ध–गुरु की संगति को पा करके ये लोग योगी बनते हैं, तब संसार चक्र नष्ट होता है। उससे पहले किसी भी प्रकार से उनका संसार–चक्र नष्ट नहीं होता। यहाँ पर इन श्लोकों में बड़े–बड़े ऊँचे ज्ञानी को भी संसार चक्र से निवृत्त होने के लिए सिद्ध–संगति की आवश्यकता वांछित हुई। इसलिए जगदाता भगवान श्रीकृष्ण जी ने सत्संग की महिमा का इतना बड़ा वर्णन किया है। सत्संग शब्द का अर्थ हम पहले ही लिख चुके हैं।

सत्पुरुषों व महापुरुषों का संग ही सत्संग कहलाता है। ज्यों ही मनुष्य को सत्पुरुषों की संगति मिलती है और सत्संगति प्राप्त करने वाला यदि पुण्यात्मा होता है तो इस प्रकार की चेष्टायें बन जाती हैं जिनसे परिपूर्णतम सर्वसमर्थ सिद्ध गुरु का हृदय प्रसन्न हो जाय और प्रसन्नता में उनका जो संकल्प बनता है वही उसके कल्याण का मूल स्रोत बन जाता है। सिद्धों के संकल्प में ही सकल कल्याण निहित है। जो जीव सिद्धों की संगति करते हैं वे यदि पुण्यात्मा हैं तो उनके द्वारा गुरुदेव के मनोनुकूल उचित व्यवहार, सेवादि स्वाभाविक सम्पन्न हो जाता है। उसकी उस विनम्रता और सेवाओं को देखकर गुरुदेव के मन में उसके प्रति ऊँचा शुभ संकल्प बनता है जिसके कारण वह व्यक्ति समाहित चित्त हो जाता है, स्वयं तर जाता है और दुनिया को तारने वाला बन जाता है, क्योंकि समर्थ पुरुषों की हरेक क्रिया से उसमें बार–बार शक्ति संचरित होती रहती है। गुरुदेव का बार–बार आल्हादपूर्वक शक्ति संचार करना उनके अभ्युत्थान का कारण बन जाता है। इसलिए भगवान श्रीकृष्णचन्द जी ने–

यथावलम्धे सत्संगः, सर्व संगापहो हि माम्।

ये शब्द सत्संग की महिमा में कहे हैं।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु पराबुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।।

(श्रीमद् भागवद् गीता)

इन्द्रियाँ श्रेष्ठ हैं, इन्द्रियों की अपेक्षा 'मन' अधिक श्रेष्ठ है, मन की अपेक्षा 'बुद्धि' अधिक श्रेष्ठ है और बुद्धि की अपेक्षा 'आत्मा' अधिक श्रेष्ठ है।

गुरु पूर्णिमा एक महा अमृत पर्व

कितने मनमोहन हैं ये दोनों शब्द? तात्विक दृष्टि से देखा जाये तो यह दोनो एकार्थक है। गुरु पूर्णिमा जन सामान्य में व्यास पूजा के नाम से प्रख्यात है। व्यास शब्द का अर्थ सामान्यतया लोग कथा, प्रवचन तथा उपदेश करने वाले कथा वाचक के रूप में लेते है, किंतु व्यास शब्द का अर्थ संस्कृत में विशाल है। इसके विपरीत संक्षेप को समास कहा जाता है। गुरु शब्द गृ शब्दे (क्रमादिगण) तथा गृ निगरणे इन दो धातुओं से उत्पन्न होता है। गृहाति उपदिशति धर्ममिति: गुरुः, जो योग धर्म का उपदेश करे वह गुरु है। यद्वा गीर्यतस्तूयतेदेवगन्धर्वादिभिरिति गुरुः अथवा देव गन्धर्व आदि जिनकी स्तुति करते हैं वह गुरु है अथवा गिरत्यज्ञानमिति गुरु: जो अज्ञान को निगल जाता है वह गुरु है। जो गुरु है वही पूर्ण है। गुरु वह है जो गरिमामय है जिनमें गुरुत्वाकर्षण है, जीवों को अपनी ओर खींच लेते हैं। जो सबसे बड़ा है, सर्व समर्थ है, सबसे व्यापक है, अनन्त है। पूर्णत्व गुरुत्व में ही है। उस पूर्ण सत्ता को ही शास्त्रों की भाषा में ब्रह्म कहते हैं अर्थात् जो सर्वत्र व्याप्त है। "सर्व समाप्नोसि ततोऽसि सर्वः" (गीता) जो सबको अपने में समेट लेता है इसलिए वह सर्वरूप है। उसे सर्वगत भी कहा जाता है सर्वगत होने से ब्रह्म पूर्ण है उपनिषद् में मंत्र आता है– "पूर्ण मदः पूर्णमिदं पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते" अर्थात् वह ब्रह्म पूर्ण है यह जगत भी उससे व्याप्त होने के कारण पूर्ण कहा जाता है। पूर्ण में से पूर्ण निकाल देने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है।

यहाँ पर पूर्ण शब्द ब्रह्म की अभिव्यक्ति के लिए ही व्यवहृत हुआ है। श्रुति में 'रसो वैसः' कहकर ब्रह्म को रस रूप माना है। रसों का मूल स्त्रोत चन्द्रमा है। पूर्ण चन्द्रमा में अमृत बनता है वह अमृत ही रस रूप ब्रह्म है। गुरु में भी अमृतत्व है। शिष्य को अ मृत (अमर) बना देने की सामर्थ्य गुरुदेव में ही होती है अन्य किसी में नहीं। गुरु पूर्ण समर्थ होता है, चेतना का महा स्त्रोत होता है।

भगवान का अवतरण समय-समय पर इस संसार में होता चला आ रहा है। जब वे मानवाकृति में आते हैं तब वे अपने सदुपदेश से, अपने दिव्य संस्पर्श से, लोकोत्तर चरित्र से जीव के कल्याण के लिए कृतसंकल्प रहते हैं। इस रूप में भगवान का ऐसा मिलन जीव ब्रह्म का आत्यात्मिक एवं भौतिक उभय मिलन होता है। उस समय वे गुरु शिष्य के रूप में ही होते हैं उस क्षण जीव उस परम गुरु अपने इष्ट को पाकर यह भूल जाता है कि जन्मने मरने वाला जीव है। वह इष्ट के रूप में तदाकार हुआ सिद्ध समर्थ गुरु अपने शिष्य के आत्मोत्थान के लिए मानस

शक्ति का संचार करके शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक मल के शोधन के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार की क्रियायें कराते रहते हैं।

भगवान कृष्ण गीता में मन और बुद्धि को इष्ट के सगुण रूप में समाहित कर देने की बात कहते हैं। भगवान की कृपा से जीव के मन और बुद्धि को अपने में विलय करा लेते हैं जिससे जीव जीवत्व को त्याग कर ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है। उस परम भाग्यशाली जीव भगवान जीव ब्रह्मैक्य का बोध करा देते हैं। यही भगवान के अवतरण का रहस्य एवं उद्देश्य है। भगवान के इसी गुरुत्व के आकर्षण के कारण ही वे जगद्गुरु कहलाते हैं। जीवों का इस प्रकार से परम गुरु से मिलन सहसा संयोगवश नहीं होता है। जन्मजन्मान्तर की उस आत्मदेव से मिलने की चाह तथा तद्भावना शक्ति होकर उस जन्म के दृढ़ संस्कार–सम्बन्ध के स्थापित होने पर यह बात सम्भव हो जाती है। अन्यथा परात्पर शक्ति के पृथ्वी पर आविर्भाव होने पर भी उनके निकट सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति भी अपने कर्मों की मलिनता से भगवान के निन्दक बनकर ही अपना जीवन बिता देते हैं।

हममें से बहुत से महाभाग्यवान पुरुषों ने उन परम देव का श्री सद्गुरुदेव चन्द्रमोहन जी महाराज के रूप में दर्शन एवं पावन सानिध्य का परम लाभ प्राप्त किया है। उनके पावन चरण तल में बैठने पर ही जीव की कामनायें एवं वासनायें विलुप्त हो जाया करती थीं। परम शान्ति एवं आनन्द का साम्राज्य छा जाता था। प्राण स्वतः ही निश्चल हो जाता था। सभी उपस्थित शिष्य समुदाय का जिनके गुरुदेव ही एक मात्र परायण एवं सूत्रधार हैं यह देखकर ''मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रेमणिगणाइव'' यह वचन मानस पटल पर घूमने लगता था।

आश्रम का जब कोई सामूहिक कार्य करना होता था तो प्रायः गुरुदेव जी स्वयं वहाँ विराजमान रहा करते थे। सेवाकार्य करते हुए उन शिष्यों के अदम्य उत्साह एवं उल्लास को देखकर सहज में ही प्रभु के पूर्व–पूर्व अवतारों के समय की, की जाने वाली लीलाओं का स्मरण हो आता था। गुरुदेव अपनी प्रसन्नता के व आशीर्वाद के माध्यम से शिष्यों में दिव्य शक्ति का संचार करते रहते थे। सर्व समर्थ गुरुदेव अपने शिष्यों को अध्यात्म सम्पदा व परमधन देना चाहते हैं। जिसे वे सेवा आदि कराकर इसी बहाने से दे दिया करते हैं। उस सम्पदा को पाकर जन्म–जन्म का भिखारी जीव धन्य हो जाता है और अनिर्वचनीय आनन्द के सागर में स्नान करने लगता है। गुरुदेव भी अपने शिष्य के मन और बुद्धि को अकल्मष बनाकर अपने में समाहित कर लेते हैं। अन्यथा जीव की सामर्थ्य ही क्या है? कि वह वाङ्मानस अगोचर उस परम चेतन में अपने को विलीन कर दे। गुरुदेव शिष्य को सगुण देहधारी बनकर अपने चिन्मय शरीर का ध्यान कराते हुए उसे निर्गुण तक पहुँचाते हैं। शिष्य जिस क्षण सद्गुरु से दीक्षित हो जाता है उसी क्षण से उसके जीवन का शुक्लपक्ष प्रारम्भ हो जाता है। गुरुदेव मन्त्र स्वरूप होकर शिष्य के अध्यात्म शरीर में अनुप्रविष्ट हो जाते हैं। तत्पश्चात् शिष्य को अपने नित्य चैतन्य स्वरूप का बोध कराने में कृत संकल्प रहते हैं।

शास्त्रों का लेख है 'गुरु पूजा विहीनानाम' तथा गुरु सन्तोष हीनानाम न सिद्धि स्यात् कदाचन्। अर्थात् जो गुरुदेव की पूजा नहीं करते तथा गुरुदेव की प्रसन्नता को प्राप्त नहीं करते उन्हें मोक्षरूपी सिद्धि कदापि नहीं मिलती। गुरुदेव और ईश्वर में अभेद दृष्टि रखकर पूजा करने का शास्त्रों में आदेश है। किंतु हर शिष्य इस अभेद दृष्टि को पा जाये यह कठिन है। पूर्वार्जित साधना के पुण्य से अथवा गुरुदेव अपनी आत्म सत्ता का बोध करा दें तभी यह अभेद दृष्टि उपजती है। गुरु और ईश्वर में भेद दृष्टि रखना भी पाप है। इसकी निवृत्ति गुरुदेव में श्रद्धा से, सेवा से एवं गुरुदेव की अनुकम्पा से होती है। वस्तुतः आत्म स्वरूप को प्राप्त कर लेना ही गुरु पूजा है। गुरुदेव भगवान कहा करते थे कि जो हमारे आदेश के अनुसार जाप व ध्यान करता है वही हमारा प्रिय है व सच्चे अर्थों में उपासक है। शिष्य का गुरु ही प्राण है। हमारे गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज अपने गुरुदेव श्री प्रभु जी के लिए 'प्राणधन' कहा करते थे। गुरु कृपा से ही शिष्य की गरिमा है। शिष्य को गुरु सेवा व आराधना से सब कुछ मिल जाता है।

अतः शिष्य को भुक्ति व मुक्ति की प्राप्ति के लिए गुरुदेव की आराधना ही करनी चाहिए।

आइये! सभी गुरुभक्त मिलकर गुरु पूर्णिमा का पावन महोत्सव धूमधाम कैसे मनायें।

जय गुरुदेव की।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।

(श्रीमद्भगवद् गीता 61/18)

अर्थात् हे अर्जुन! ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय में रहता है और अपनी माया से शरीर रूपी यन्त्र पर आरूढ़ (सवार) हुए सम्पूर्ण प्राणियों को (उनके स्वभाव के अनुसार) भ्रमण करता रहता है।

माँ-बाप की सेवा

अंशुमान देव मालवीय, वाराणसी (उ.प्र.)

विश्व विख्यात हमारी भारतीय संस्कृति इतनी दिव्य व अलौकिक है कि विश्व के कोने-कोने से लोग यहाँ इसे देखने, समझने व परखने आते हैं और इसके रंग में रंग जाते हैं। यहाँ विदेशी हर तीर्थ को जाते हैं और उसकी विशेषता को जानते हैं जो कि हमारे लिए गर्व की बात है परंतु हम ऐसी भारतीय संस्कृति जो कि दिव्य व परम आनन्द देने वाली है उसे छोड़कर पाश्चात्य संस्कृति को अपना रहे हैं जो कि हमारे लिए उचित नहीं है।

हमारी भारतीय संस्कृति तो इतनी सरल व जीवन उपयोगी है कि जो इसे अपनाता है उसका जीवन बड़ा ही आसान व दिव्य हो जाता है। हमारी भारतीय संस्कृति हमें अपने जीवन के कर्तव्यों का बोध कराती है, जैसे कि हमारा माँ-बाप तथा गुरु के प्रति क्या कर्तव्य है। अपने परिवार के प्रति क्या कर्तव्य है। वास्तव में देखा जाये तो माँ-बाप हमारे लिए साक्षात् भगवान स्वरूप हैं और हम इनकी जितनी भी सेवा करें, हम इनका ऋण नहीं उतार सकते हैं। उदाहरण स्वरूप यह दो लाइन उपयुक्त हैं:-

यं मातापित्तरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।

न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि।।

अर्थः- यदि मनुष्य सैकड़ों वर्षों तक माता-पिता की निरन्तर सेवा करे तो भी उनका ऋण उतारना कठिन है।

इस वक्तव्य पर एक घटना का वर्णन करना उचित होगा कि माँ-बाप की सेवा पुत्र को कैसे करनी चाहिए। उसके मन में अपने माँ-बाप के प्रति कैसा भाव होना चाहिए।

श्रवण कुमार नाम का एक गरीब आदमी अन्धे माँ-बाप के साथ रहता था। वह अपने अन्धे माँ-बाप की सैवा खूब करता था। उसकी सेवा से उसके माँ-बाप बहुत ही खुश व प्रभावित रहा करते थे। श्रवण कुमार के माँ-बाप ने एक दिन तीर्थ करने की इच्छा जतायी श्रवण कुमार ने बड़ी ही खुशी से अपने माँ-बाप के इस प्रस्ताव को शीघ्र पूरा करने का वचन दिया और तीर्थयात्रा की तैयारी में लग गया। उसने एक मजबूत बाँस में दो टोकरी को रस्सी के माध्यम से बाँध लिया और तराजू की तरह बना लिया जिसमें एक तरफ उसने अपनी माँ को बिठा लिया तथा दूसरी तरफ अपने पिता को बिठा लिया और कन्धे पर लेकर चल दिया तीर्थयात्रा को। कुछ तीर्थयात्रा करने के बाद श्रवण कुमार एक नदी के पास पहुँचा तब उसके माँ-बाप ने जल पीने की इच्छा जतायी। तब श्रवण कुमार अपने माँ-बाप को एक पेड़ के नीचे बिठा कर जल लेने नदी की तरफ चला गया।

इधर अयोध्या नरेश दशरथ शिकार पर निकले थे और श्रवण कुमार जब पानी भरने लगे तब राजा दशरथ ने यह सोचा कि लगता है हिरण पानी पी रहा है और राजा दशरथ ने शब्द-भेदी बाण चला दिया और यह बाण जाकर श्रवण कुमार को लग गया। बाण लगते ही श्रवण कुमार चीख उठा, चीख सुनकर राजा दशरथ नदी की ओर गये जाकर देखा कि बाण किसी हिरण को नहीं मनुष्य को लगा है। राजा दशरथ श्रवण कुमार के पास गये और पूछा कि आप कौन हैं? तब श्रवण कुमार ने पीड़ा भरे शब्दों में कहा राजन्! मेरा नाम श्रवण कुमार है। बगल में ही मेरे माँ-बाप एक पेड़ के नीचे बैठे है वे प्यासे हैं कृपया उनको यह जल पिला दीजिएगा। इतना कहते ही श्रवण कुमार के प्राण निकल जाते हैं।

राजा दशरथ घड़े में जल भरकर श्रवण कुमार के माँ-बाप के पास पहुँचे और जल पीने का आग्रह किया, तब श्रवण कुमार के माँ-बाप ने पूछा कि राजन्! हमारा पुत्र कहाँ है? सर्वप्रथम हमें यह बताये तभी हम जल ग्रहण करेंगे। तब राजा दशरथ ने आप बीती बतायी तब श्रवण कुमार के माँ-बाप ने श्राप दिया कि जिस तरह हम अपने पुत्र वियोग में तड़प-तड़प कर मर रहे हैं, उसी तरह तुम भी पुत्र वियोग में तड़प-तड़प कर मरोगे। ऐसा कहते ही श्रवण कुमार के माँ-बाप के प्राण निकल गये, और राजा दशरथ के साथ भी वही हुआ। वह भी अपने पुत्र वियोग में भगवान राम के वनवास जाने के पश्चात् तड़प-तड़प कर मर गये।

हमारा यह जीवन बड़े ही भाग्य व पुण्यों के संचय से मिला है। अगर इस जीवन को व्यर्थ में जाने दिया तो फिर चौरासी लाख योनियों के चक्कर में मनुष्य पड़ जायेगा। इसलिए समय रहते अपने इस जीवन का सदुपयोग करना होगा और यह उपयोग होगा तब, जब हम अपनी भारतीय संस्कृति के माध्यम से बोध कराये गये कर्त्तव्यों का पालन करेंगें। अपने माँ-बाप व गुरुजन की सेवा को ही अपना पहला कर्त्तव्य समझेंगे।

आप सभी सुयोग्य पाठकों से मेरा यह सविनय निवेदन है कि लेख की त्रुटि को ध्यान न देकर इसके पवित्र भावों को ग्रहण करें।

''जैसे नदियाँ समुद्र के पास जाती हैं, इसी तरह सोने से मढ़े हुए सींगों वाली दुग्धवती, सुरभि और सौरभेदी गौएँ मेरे निकट आवें। मैं सदा गौओं का दर्शन करूँ और गौएँ मुझ पर कृपा वृष्टि करें। गौवें मेरी हों और गौओं का मैं हूँ। जहाँ गौएँ रहें, वहीं पर मैं भी रहूँ।''

कथायें जो मेरे मन को लुभाती हैं

डा. विजय सिंह

महाप्रभु योग योगेश्वर श्री रामलाल जी एवं प्रतिपल स्मरणीय हमारे सद्गुरु भगवान योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी के स्वचरित्रों की असंख्य कृपा कथाओं में मुझे कुछ कथायें अत्यन्त प्रिय लगती है। महात्मा अगड़धत्ता जी का प्रसंग तथा तस्कर प्रसंग मैं बार-बार पढ़ता हूँ। ये दोनों कथायें मेरे अन्दर मन में एक विशेष प्रकार की गुलगुली मचा देती हैं। एक निश्चिन्तता मन में उदय होता है। प्रभु परमेश्वर के चरणों की महिमा उजागर होकर दृश्यमान रूप से चंचल मन को एकाग्र करती हैं।

तस्कर (चोर) प्रसंग देखें– (देखें इसलिए कि घटना मुझे दृश्यमान हो उठता है)। दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी अनेक शरीर धारण कर इस भारत भूमि में जीवोद्धार का कार्य करते ही रहते हैं। उनके नामों और रूपों का रहस्य बिना उनकी अहैतुकी कृपा के कौन जान सकता है। अस्तु! वर्णन करते हैं। एक महात्मा भ्रमण करते हुए कही जा रहे थे। उन्हें भूख लगी। दूर तक कोई दिखाई नही दे रहा था। तभी उनको एक व्यक्ति आता दिखाई पड़ा।

महात्मा उससे बोले– बेटा! हमें भूख लगी है कुछ खिला। आगन्तुक ने महात्मा को प्रणाम कर उनको एक शीतल वट वृक्ष के नीचे बैठाकर बोला– आप! महाराज यहीं विराजिये हम आपके लिए कुछ खाने हेतु भोजन शीघ्र ही लाते हैं।

वह आगन्तुक थोड़ी देर में महात्मा के पास– फल, मिष्ठान लेकर आया और उनको भेंट किया। महात्मा ने उनका भोग लगाया। जिस समय महात्मा खा चुके तो आगन्तुक हँसने लगा। महात्मा ने पूछा– भला, तुम्हारे हँसने का क्या कारण है? उसने कहा महात्मन् मैं सत्य ही बोलता हूँ। यह हमें आदत है। महात्मा ने कहा– सत्य-सत्य कहो यह भोज्य पदार्थ कहाँ से लाकर मुझे अर्पित किया है? उसने कहा– प्रभो! मैं तस्कर हूँ यह सब तस्करी के रुपये से खरीद कर लाया हूँ। मैं वैश्या के यहाँ रहता हूँ। मेरी एक वैश्या से सम्बंध हैं। वह मुझे बहुत चाहती है। उससे ही दो रुपये शराब पीने के लिए छीन कर लाया था। उसी पैसे से यह भोज्य लाकर आपको खिला दिया! मैं इसीलिए हँस रहा था कि अब तुम भी इस कर्म का फल भोगोगे।

महात्मा ने देखा यह मेरा संस्कारी है इसका अपना लेते हैं। इसमें सबसे बड़ा गुण है कि यह सत्य बोलता है।

सिद्धयोग के विज्ञ पाठक! आप जानते हैं कि अष्टांग-योग का यम प्रथम द्वार का मौलिक आधार सत्य है। ब्रह्म का स्वरूपात्मक लक्षण "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" के द्वारा चरितार्थ होता है। अतः मोक्ष कामी मानव उन प्रभु से पुकार करते हैं कि हमें असत्य से सत्य की

और, अंधकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमरता की ओर ले चले। सिद्ध लोग अपनी शक्ति एवं अथक श्रम के साथ मनुष्यों के रूपान्तरण का कार्य करते है। वे विभिन्न स्वभाव वालों के लिये विभिन्न तरीके प्रयोग में लाते हैं।

उन कृपानिकेतन श्री महाप्रभुजी ने कहा– तुम्हारे सगे सम्बन्धी कौन–कौन हैं? तस्कर ने कहा– महात्मन! मेरा कोई अपना नहीं है। मुझसे एक वैश्या प्रेम करती है। प्रभु ने कहा–बच्चे! वह तो तेरी शत्रु है। तस्कर नाराज होता हुआ बोला ऐसा आप फिर कभी नहीं कहें। वह मुझसे सच्चा प्रेम करती है। अपने पास मेरा तस्वीर बनवाकर रखी है। जब मैं उसके पास रहता हूँ तो वह मुझसे ऐसी प्रीति करती है जैसी पृथ्वी पर कोई और स्त्री नहीं करती होगी। जब मैं बाहर जाता हूँ तो मेरी तस्वीर को गले लगाकर रोती रहती है।

सद्गुरु–प्राप्ति भगवान की परिपूर्ण कृपा से ही जीव को प्राप्त होता है। सिद्धरूप में, देवता रूप में अथवा सामान्य मनुष्य रूप में श्री गुरुदेव जीव उद्धार के लिए प्रकट होते हैं। वे जिस समय जिस जीव को स्वीकार करते हैं उसी क्षण से उसे अपने अन्तर में, स्वभाव में हुआ परिवर्तन अनुभव होने लगता है। श्री प्रभुजी के प्रति तस्कर का सहज आकर्षण बना था। अतः परमप्रभु ने विचार किया इस तस्कर को अपना लेते हैं। उनकी यह इच्छा शक्ति ही कृपा शक्ति रूप में तस्कर को प्राप्त हो गया। तत्काल उसके अन्तःकरण में शक्ति संचार से दुःख, क्लेश रूपी अन्धकार में कमी होना प्रारम्भ हो गया।

महाप्रभु ने कहा– बच्चा! जिस स्त्री को तुम इतना प्रेम जता रहे हो। उसकी मेरे कहने से परीक्षा कर लो। तुझे तब सत्य का ज्ञान हो जायेगा। तस्कर ने पूछा– कैसे परीक्षा करूँ?

प्रभु ने कहा– तुम आज अपनी वैश्या को कह देना कि हम तस्करी करने जा रहे हैं। तस्करी के सामान जो तुम ले जाते हो उसे अपने साथ लेकर हमारे पास आना फिर हम तुम्हें दिखा देंगे कि वह तुम्हारी है या किसी और की है। तस्कर ने सद्गुरु आदेश का यथावत पालन किया और वैश्या के पास से तस्करी का सामान लेकर श्री प्रभु चरणों में आया।

श्री प्रभु जी ने उससे कहा– बच्चा! हमारी कृपा से आज तुमको कोई देख नहीं सकेगा तुम सबको देख सकोगे। हाँ एक बात का ध्यान रखना आज तुम किसी से बोलना नही और न ही किसी का स्पर्श करना। सब कुछ बस देखना। उनकी बातें सुनना। समय पर उसे श्री प्रभुजी ने वैश्या के घर जाने का आदेश दिया। कभी–कभी हम लोग सोचते हैं कि जैसी कृपा महाप्रभु जी ने रामरती पर किये थे वैसी कृपा हम पर क्यों नहीं। पहली बात तो यह कि कर्म की गति अत्यन्त दुष्कर है जानना। त्रिकालज्ञ, विश्व–ब्रह्माण्ड के सर्जक ही जीव के उद्धार का समय जानते हैं और उस पल कृपा करने में वे देर नहीं लगाते।

लौकिक दृष्टिकोण से यदि विचार करें तो चोर, डाकू आदि में अवगुणों के साथ एक विशेष गुण ही उनके सफलता का कारण बना करता है। वह है, उनकी निडरता। स्याह रात्रि में

जब हम घरों में सुरक्षित दुबके पड़े रहते हैं तब वे साँप–बिच्छु एवं मृत्यु की परवाह न कर अपने कृत संकल्प पूर्ति हेतु घर से निकल पड़ते हैं। उन्हें अपने शरीर का आत्यान्तिक मोह नहीं रहा करता है। यह सब जीव के मन के परिपाक पर निर्भर है। बारूद में आग लगते देरी क्या लगती है, पर कोयले में आग दहकने में समय और उपाय दोनों की आवश्यकता पड़ती है। सत्य तो यह है कि योगारूढ़ होने के लिए साधक को अपने झूठे अहं तथा निजी स्वार्थ का समर्पण सद्गुरु चरण में करना ही पड़ता है।

श्री महाप्रभु जी की कृपा दृष्टि में आया तस्कर वेश्या की परीक्षा हेतु उसके घर की ओर चला। श्री प्रभु कृपा से वह अदृश्य था। वह सबको देख सुन सकता था परंतु दूसरे उसे नहीं देख सकते थे। अतः जब रात्रि में वह वैश्या के घर पर पहुँचने वाला था कि उसने देखा उसकी प्रियतमा वैश्या किसी अन्य पुरुष के साथ घर की ओर आ रही थी। वह भी उन दोनों के साथ ही घर में प्रवेश किया। श्री प्रभुजी के योगबल से वह अदृश्य रह कर उन दोनों की बातों को सुनने लगा।

तस्कर ने देखा– वैश्या उस दूसरे आदमी को उससे भी ज्यादा प्रेम जताने लगी। दूसरे व्यक्ति ने कहा– तू हमारी नहीं है तू तो तस्कर से प्रेम करती है। वैश्या ने कहा– नहीं मुझे आप से प्रेम है, तस्कर से नहीं। उससे तो मैं भय मानती हूँ। अन्य व्यक्ति ने कहा– फिर, उसे मरवाती क्यों नहीं है। अब जो वह आवे उसे मरवा दो। वैश्या ने कसम खाली और बोली कल रात जब वह आयेगा तब उसे सुलाकर तुम्हें बुलाऊँगी। हम तुम दोनों उसे मार देंगे। दूसरे व्यक्ति ने कहा उसकी तस्वीर उठा ला और इसकी नाक काट तब हमें तुझ पर विश्वास होगा। वैश्या ने कहा नाक काहे को काटूँ उसका सिर काटूँगी। यह कह कर तलवार से उसका सिर उतार दिया। उपरान्त! वैश्या का यह सब हाल देख सुनकर तस्कर क्रोध, ग्लानि, क्षोभ से संतप्त ह्यदय व्याकुल होकर श्री प्रभुजी के चरणों में पहुँचा। सब हाल उन सर्वअन्तर्यामी को हतास व कुण्ठित मन से बताया।

उसे आश्चर्य हुआ जब श्री प्रभुजी ने उसे प्रशान्त दृष्टि से देखते हुए बोले– अब जैसी तुम्हारी इच्छा हो सो करो। उसने कहा– प्रभो! आज से मैं आपका सेवक हुआ। मुझे अपना शिष्य बना लीजिए।

तस्कर के बेचैन मन को श्री प्रभु जी के सानिध्य मात्र से प्रशांति की धारा अन्दर पैठती प्रतीत हुई। उसे लगा उसका पूर्व जीवन एक सपना था जो दुःखों, दुष्कर्मों से भरा था। वह आन्तरिक विश्वास से भर उठा। मेरा उद्धार इनके चरणों में ही है।

प्रगटतः श्री प्रभुजी बोले– बच्चा! हम तुमको कैसे शिष्य बना सकते हैं। कौन तस्कर को शिष्य बनाता है। वह श्री प्रभुजी के ऐसे वचन सुनकर तत्काल श्री चरणों में गिरकर चरणों को पकड़ लिया। बोला– नाथ आपकी कृपा से हम आज से तस्करी करना छोड़ दिया। मेरा आपके सिवाय इस दुनियां में कोई नहीं है। मुझे अपना शिष्य स्वीकार करें।

श्री प्रभुजी उसको साथ लेकर अपने मठ पर पहुँचे। नये शिष्य से लोगों ने पूछा तुम कौन हो? तस्कर ने कहा मैं एक चोर था अब मैं इनका शिष्य हूँ। कर्ण परम्परा से यह बात सारे गाँवों में फैल गया कि मठिया वाले महात्मा ने एक चोर को चेला बना लिया है। अब न जाने क्या होगा?

इधर तस्कर श्री प्रभु के बताये क्रियाओं को तन्मयता से करता। नि:स्वार्थ भाव से अन्य समयों में श्री सद्गुरु सेवा में लगा रहता। सेवा में लगे रहने पर भी उसे प्रतिपल अपने सद्गुरु का स्वरूप अन्त: में विराजमान दीखता। सद्गुरु की संगति, कितनी भी क्षणिक क्यों न हो, साधक के आध्यात्मिक एवं लौकिक दोनों बातों में काफी लाभ पहुँचता है। वह शिष्य समर्पित भाव से ध्यान–कर्म में लगा रहता और समय सद्गुरु के उपदेशानुसार आचरण करता।

परंतु अंध समाज को महापुरुषों की गति–मति का क्या ज्ञान? लोगों ने मठिया पर धीरे–धीरे आना जाना कम कर दिया। तस्कर ने देखा हमारे गुरु को कुछ आय तो है नहीं अब यहाँ का गुजारा कैसे चलेगा। उसे इस बात की बड़ी चिन्ता सताने लगी। उसने देखा गुरुदेव आठ पहर में थोड़ा अन्न ही लेते हैं इनको पीने को दूध भी अब नही मिलता। यह सब सोचते हुए मठ से बाहर निकला, देखा लड़के भैंस चरा रहे हैं। उसने लड़कों को मार–पीट कर भगा दिया और पाँच भैंसे दूध देने वाली लाकर मठ के पीछे बाँध दीं।

इधर लड़के ने गाँव में जाकर पुकारा कि महात्मा का चोर चेला भैंस छीन ले गया। गाँव में लोग इकट्ठे होकर महात्मा के पास आये और बोले– महाराज आपका चोर चेला हमारी भैंसे छीन कर ले आया है। महात्मा ने पूछा– तुम्हारी भैंसे कैसी हैं? हमारी भैंसे काली हैं और सींगों में कुण्डल पड़े हुए हैं। पाँच भैंसें थीं। पहचान करके ले जाओ उधर पीछे बंधी हुई है। वे लोग उधर जाकर देखा भैंसे सफेद रंग और उनकी सींग गले की ओर मुड़े हुए थे। गाँव के लोग महात्मा से क्षमा माँग कर अपने–अपने घर को चले गये। इधर शिष्य सद्गुरु चरणों की महिमा एवं ममत्व देखकर अपने कृत्य पर पश्चाताप करने लगा। महात्मा ने कहा– बच्चे! जो साधन कर्म बताया है उसे करते रहो। वह और तत्परता से सेवा में एवं साधना में लगा रहा। उसकी निष्ठा एवं अन्तर जगत् में प्रवेश सद्गुरु कृपा से दिन–दूनी रात चौगनी बढ़ती गयी।

सच्चे सद्गुरु का मिलना ही परम सौभाग्य की बात है। संसार का हर प्राणी आनन्द की खोज में ही सारे कर्म करता है। परंतु आनन्द के शाश्वत स्त्रोत आत्मा का बोध न होने के कारण सभी दुखी हैं। पापी भी हर एक पाप में अपनी आत्मा का ही सच्चा आनन्द पाने की चेष्टा करता है। आनन्द की आशा से ही वे पापाचरण में लगते हैं। नि:संदेह बुरे कर्मों का फल दु:ख ही है, आनन्द नहीं। सच्चा रूपान्तरण सद्गुरु द्वारा ही हो पाता है।

तस्कर साधक आगे चलकर वाचा सिद्ध हो गया। एक दिन वह गाँव में भिक्षा लेने गया तो कहने लगा जो एक रोटी दे उसके घर एक लड़का पैदा हो, जो दो रोटी दे उसे दो लड़के

अर्थात् जो जितनी रोटी दे उसे उतने लड़के पैदा होंगे। एक खात्री अति बूढ़ा था उसके घर संतान नहीं थी उसने उसे छ: रोटी दे दी उसकी बूढ़ी स्त्री को गर्भ ठहरा और समय पर छ: लड़के इकट्ठे पैदा हुए।

सवाई ग्राम के साधक रघुराज को प्रसन्न होकर श्री सद्गुरु भगवान ने वाचा सिद्धि दिया। परंतु उसने उसका दुरूपयोग करना शुरू कर दिया अत: वह शक्ति सद्गुरु ने उससे लेली थी। उसने दूध न देने वाली भैंस पर प्रयोग किया कि आज वह दस लीटर दूध दे। साथ उसे यथार्थत: दूध प्राप्त हुआ।

गुरु भेंट

गुरुवर तेरे आने पर, महफिल सज जाती है।
सबेरा हो जाने पर, अन्धेरी मिट जाती है।।

1. जिस पर होती गुरुकृपा, वह भाग्यशाली है।
बिना गुरु के मानस पर, कंगाली ही कंगाली है।।
जब बरसे आसमां से पानी, खेती हरी हो जाती है।।

2. प्रभु राम लाल ने सिद्ध गुफा पर योग की ज्योत जलाई।
गुरु चन्द्रमोहन ने उस को सारे भारत में चमकाई।।
किया प्रकाश सभी ह्रदय में जब ज्योति जगमगा जाती है।।

3. योग ध्यान से सबने करनी होगी आत्मा जागृत्।
बिना गुरु कृपा के, ये नहीं होती विकसित।।
मंडप में दुल्हा आने पर, शहनाई बज जाती है।।

4. मोती राम ने योग प्रचार का बीड़ा उठाया।।
घर घर जाकर ज्ञान के संदेश को सुनाया।।
शुद्ध ह्रदय हो जाने पर, भगवत दया हो जाती है।।

गुरुवर तेरे आने पर, महफिल सज जाती है।
सबेरा हो जाने पर, अन्धेरी मिट जाती है।।

–मोती राम गर्ग,
अलूपुर

प्राणायाम से संस्कार शुद्धि

डा. जे.पी. शर्मा, पौंटा साहिब जि. सिरमौर (हि. प्रदेश)

''तस्मिन सति श्वास प्रश्वासयोर्गति विच्छेदः प्राणायामः''

(पतंजलि योगदर्शन, 2/49)

अर्थात् महर्षि पतंजलि जी महाराज ने अपने योग दर्शन में प्राणायाम की व्याख्या करते हुए समझाया है कि आसन (बैठने की स्थिति) सिद्ध होने पर श्वास तथा प्रश्वास की गति का रुक जाना ही प्राणायाम है। नासिका छिद्रों द्वारा हवा का अन्दर प्रवेश, श्वास तथा नासिका छिद्रों द्वारा अन्दर की वायु का बाहर निकलना, प्रश्वास कहलाता है। प्राणवायु की गमनागमन क्रिया का बन्द अथवा रुक जाना ही प्राणायाम का सामान्य उद्देश्य है।

प्राण+आयाम मिलकर प्राणायाम कहलाता है। प्राण का अर्थ प्राणवायु (हवा) है तथा आयाम का अर्थ ठहराव, रुकावट, आराम, अथवा विश्राम से है। अतः श्वॉस तथा प्रश्वॉस की गति में कमी कर दी जाये तो निश्चय ही प्राणायाम का उद्देश्य सफल होगा। सामान्यतः मनुष्य एक मिनट में पन्द्रह बार साँसें लेता है, अगर हम पन्द्रह की जगह साँसों की गति 10 या 12 बार प्रति मिनट कर दें, तो निश्चय ही साँसों की गति में कमी आ जायेगी।

परम पिता परमात्मा ने हर जीवधारी को स्वासों की एक निश्चित संख्या देकर उत्पन्न किया है, उसने आयु निश्चित नहीं की है। स्वाभाविक रूप से मनुष्य चौबीस घंटों में 21,600 बार साँसें लेता है। अगर हम साँसों की संख्या दर कम करके 15 की जगह 12 बार प्रति मिनट कर दें तो हमें 21,600 साँसें पूरा करने में तीस घंटे लगेंगे। अभिप्राय है कि प्राणायाम द्वारा प्रभुप्रदत्त साँसों की निश्चित संख्या पूरा करने में अधिक समय लगेगा, अर्थात् हमारी आयु बढ़ जायेगी, यही प्राणायाम का फल है।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।

(प्राणायामरहस्य)

अर्थात् अग्नि आदि में तपाने से स्वर्ण आदि धातुओं के मल–विकार नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही प्राणायाम से इन्द्रियों एवं मन के दोष दूर हो जाते हैं।

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्। (प्राणायाम रहस्य)

प्राणायाम करने से मन पर पड़ा हुआ असत, अविद्या एवं क्लेश–रूपी तमस् का आवरण क्षीण हो जाता है। परिशुद्ध हुए मन में एकाग्रता स्वतः ही आने लगती है तथा धारणा से योग की उन्नत स्थितियों–ध्यान एवं समाधि की ओर आगे बढ़ जाता है।

प्राणायाम् के तीन भेद होते हैं। यथा,

बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभि: परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्म:।

(पातंजलियोगदर्शन, 2/50)

अर्थात् बाह्यवृत्ति या रेचक प्राणायाम्, आभ्यन्तरवृत्ति या पूरक प्राणायाम् तथा स्तम्भवृत्ति या कुम्भक प्राणायाम, तीन प्रकार का होता है तथा वह देश, काल और संख्या द्वारा भलीभांति देखा जाता हुआ, लम्बा और हल्का होता जाता है।

1. **बाह्यवृत्ति प्राणायाम :–** जब अन्दर की प्राणवायु को नासाछिद्रों द्वारा शरीर से बाहर निकाल कर, कुछ समय तक सुखपूर्वक बाहर ही रोक रखें तथा साथ ही अवलोकन करते रहें कि श्वास बाहर आकर कहाँ ठहर है, कितने समय तक ठहर है और उस समय में स्वाभाविक प्राण की गति की कितनी संख्या है। इसे रेचक प्राणायाम भी कहा जाता है। क्योंकि इसमें रेचन क्रिया द्वारा प्राणों को बाहर रोका जाता है। अभ्यास द्वारा इस दीर्घ अथवा लघु भी किया जा सकता है। प्राणायाम करते समय रेचन सबसे पहिले किया जाना चाहिए जिससे शरीर के अन्दर की दूषित वायु बाहर निकल सके।

2. **आभ्यन्तरवृत्ति प्राणायाम :–** नासिका द्वारों के द्वारा जब बाहर की वायु को शरीर के अन्दर प्रवेश कराते हैं तथा कुछ समय तक अन्दर ही सुखपूर्वक रोक सकें, रोके रखने तथा साथ ही अवलोकन करते रहें कि प्राण कहाँ और कितने समय तक सुखपूर्वक ठहरता है तथा इतने समय में प्राणों की स्वाभाविक गति की संख्या कितनी होती है। यह आभ्यान्तर वृत्ति अथवा पूरक प्राणायान कहलाता है। प्राणों को अन्दर रोका जाता है। अभ्यास के द्वारा इसे दीर्घ अथवा सूक्ष्म किया जा सकता है। यह प्राणायान की दूसरी प्रक्रिया है।

3. **स्तम्भवृत्ति प्राणायाम् :–** जब प्राणवायु को बाहर अथवा अन्दर जहाँ भी हो उसकी गति को रोके रखना और देखते रहना कि प्राण किस देश में रुके हैं, कितने समय तक सुखपूर्वक रुके रहते हैं, इस समय में स्वाभाविक गति की कितनी संख्या होती है, स्तम्भवृत्ति अथवा कुम्भक–प्राणायाम कहते हैं। अभ्यास से इसे दीर्घ या सूक्ष्म किया जा सकता है। यह प्राणायाम का अन्तिम चरण होता है।

साधक को प्राणायाम शुरू करने से पूर्व, प्राणायाम की विधियाँ पूर्णरूपेण समझ लेनी आवश्यक होती हैं, परिणाम अवश्य ही लाभदायी होंगे। अत: प्राणायाम में रेचन, पूरक तथा कुम्भक तीनों क्रियायें हो जाती हैं।

साधक को प्राणायाम के अन्तर्गत होने वाली श्वाँस तथा प्रश्वाँस के साथ अपने गुरु मंत्र अथवा अन्य मन्त्र का जप भी करना चाहिए, तभी इसके होने वाले लाभ प्राप्त किये जा सकेंगे। क्या कभी सोचा है कि हम श्वाँस क्यों लेते हैं? वस्तुत: श्वास (पूरक) द्वारा वायुमंडलीय हवा शरीर के अन्दर जाती है, फेंफड़े, वायु से ऑक्सीजन (प्राणवायु) का अवशोषण कर लेते हैं तथा अवशोषित प्राणवायु रक्त द्वारा हृदय में पहुँच कर, सारे शरीर में ऊर्जा उत्पन्न कर देती

है। जिससे शरीर के अंग–प्रत्यंग क्रियाशील बने रहते हैं। रक्त में प्राणवायु की कमी होने पर हमारा हृदय कमजोर होने लगता है तथा श्वसन क्रिया में कठिनाई आने लगती है। अतः प्राणवायु ही आत्मा का भोजन है इसमें कोई शंका नहीं है।

जन्म से मृत्युपर्यन्त हम जितने भी कार्य करते हैं, वह चार प्रकार के होते हैं। पुण्य कर्म, पाप कर्म, पुण्य तथा पाप मिश्रित कर्म और पुण्य–पाप रहित कर्म, हम दिन–रात करते हैं। जो कर्म किया जाता है, कुछ अभिलाषा उसमें छिपी रहती है, कभी वह अभिलाषा पूरी हो जाया करती है, तो कभी उसका परिणाम दृष्टिगोचर नहीं होता। कर्म का फल ही विपाक कहलाता है। कुछ कर्मो का परिणाम हम तुरन्त प्राप्त कर लेते हैं तथा कुछ का फल आने वाले समय में प्राप्त करते हैं। कभी–कभी हमारे कर्मों के फल आने वाले जन्मों में प्राप्त होते हैं। अतः ऐसे कर्म जिनका फल नहीं मिलता, वे संस्कार के रूप में संचित हो जाते हैं। अतः कर्मफल ही संस्कार के रूप में आत्मा के अन्दर संचित हो जाते हैं। प्राणी जो भी कर्म करता है तथा अपने मन और इन्द्रियों तथा बुद्धि द्वारा कर्मफल की इच्छा अनुभव करता है, वे सब उसके अन्तःकरण में संस्कार रूप में संचित हो जाते हैं, जैसे कम्प्यूटर में मेमोरी डाली जाती है तथा समय आने पर आवश्यकता होने पर उसे पढ़ लेते हैं उसी प्रकार उचित समय आने पर संस्कार भुगतान के लिए उपस्थित हो जाते हैं। यथा,

'ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम' (पतंजलियोगदर्शन, 4/8)

अर्थात् प्राणी के तीन प्रकार के कर्मो, पुण्य (शुक्ल), पाप (कृष्ण) तथा पाप पुण्य (शुक्ल–कृष्ण) मिले कर्मो से समयानुकूल उनके भोगानुकूल वासनाओं की ही अभिव्यक्ति होती है। अतः उन कर्मों से जो कर्म जिस समय फल–भोग कराने के लिए तैयार होता है, उस समय उस किये कर्म का जैसा फल होने वाला है, वैसी ही वासना (इच्छा) उत्पन्न हो जाया करती है, अन्य कर्मों के फल भोग को नहीं। संचित संस्कार भी दो तरह के होते हैं। एक वासना रूप में, जो स्मृति के कारण है दूसरा धर्मरूप जो जाति, आयु और भोग के कारण हैं। ये दोनों प्रकार के संस्कार अनेकों जन्म–जन्मांतरों से संचित होते रहते हैं। उन संस्कारों में संयम करने से ही, योगी को अपने पूर्व जन्मों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इसलिए संस्कार शुद्धि के लिए हर प्राणी को प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। यथा–

प्राणायाम के निरंतर अभ्यास से **'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्'** ज्ञान पर पड़ा पर्दा हट जाता है। गीता में आनन्दकन्द भगवान कृष्ण जी महाराज ने कहा है।

नादत्तेकस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।।

अर्थात् सर्वव्यापी परमेश्वर भी न किसी के पाप कर्म को और न किसी के पुण्य या शुभ कर्म को ही ग्रहण करता है, किंतु अज्ञान के द्वारा ज्ञान ढंका हुआ है, उसी से सब अज्ञानी मनुष्य मोहित हो रहे हैं।

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशित मात्मन:।

तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयतितत्परम्।।

परन्तु जिनका यह अज्ञान परमात्मा के तत्वज्ञान द्वारा नष्ट कर दिया गया है, उनका वह ज्ञान सूर्य के समान उस सच्चिदानन्दघन परमात्मा को प्रकाशित कर देता है। अत: प्राणायाम के अभ्यास से संचित कर्म संस्कार और अविद्यादि क्लेश दुर्बल होते चले जाते हैं।

तत्र ध्यानजमनाशयम्' (पातंजलियोगदर्शन, 4/6)

अर्थात् ध्यान का अभ्यास करने से चित्त, कर्म–संचित संस्कारों से रहित हो जाता है। इसीलिए हमारे पूज्य सद्गुरु भगवान जी हमें सदैव ध्यानाभ्यास की प्रेरणा सदैव देते हैं। क्योंकि–

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्

योगियों के कर्म अशुक्ल और अकृष्ण अर्थात् पाप–पुण्य से सदैव रहित होते हैं। उनमें चित्त, कर्म संस्कारों से शून्य हो जाता है।

धारणासु च योग्यता मनस: (पातंजलि योगदर्शन, 2/53)

अर्थात् निरंतर प्राणायाम के अभ्यास से मन में धारणा की योग्यता आ जाती है। साधक चाहें तभी अपने मन को किसी भी जगह अनायास ही स्थिर कर सकता है। प्राणायाम से मन और इन्द्रियाँ शुद्ध होने लगती हैं। इन्द्रियाँ विषयों का सेवन करना बन्द कर देती हैं तथा मन अन्तर्मुखी हो जाता है। इसे ही प्रत्याहार कहा जाता है।

तत: परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्

अत: प्रत्याहार से योगी अपनी इन्द्रियों को वश में कर लेता है। जैसे कछुवा अपने अंगों को समेट लेता है, अत: साधक इन्द्रिय विजयी बन जाता है।

जाति देश काल व्यवहितानामप्यानन्तर्यं स्मृति संस्कारयोरेकरूपत्वात्।। (9)

अर्थात् कोई कर्म किसी एक जन्म में किया गया है। कोई किसी दूसरे जन्म में किया गया है। यह उन कर्मों में जन्म का व्यवधान है। इसी तरह देश और काल का भी व्यवधान होता है। इस प्रकार जन्म, देश, काल का व्यवधान होने पर भी कर्म फल प्राप्त होने वाला है; उसके अनुसार भोगवासना उत्पन्न होने में कोई अड़चन नहीं पड़ती; क्योंकि स्मृति और संस्कार दोनों ही एक होते हैं। जिस कर्म फल का उत्पादक निमित्त कारण आ जाता है वैसी ही वासना पैदा हो जाती है। यदि किसी को पूर्व जन्म के कर्म का फल भोगने के लिए गौ की योनि मिलने वाली है, तो उसने गौ की योनि जब कभी पायी है, उसकी वासना प्रकट हो जायेगी। भाव है चाहे उस जन्म के पश्चात् दूसरे कितने ही जन्म बीत चुके हों, कितना भी समय बीत चुका हो और किसी भी देश, स्थान में पैदा हुआ हो, उसे कर्मफल (संस्कार) की भोगवासना स्फुरित हो जायेगी। स्मृति और संस्कारों की एकता होने के कारण जो फल मिलना है, उसके अनुकूल ही

भोगवासना (स्मृति) उत्पन्न हो जाती है। तभी तो संतों ने कहा है; कर्म गति टारे नाहिं टरें।। अत: कर्मों का फल हर प्राणी मात्र को भोगना ही पड़ता है।

हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तद्भावः

अर्थात् वासनाओं की उत्पत्ति का कारण अविद्यादिक्लेश और उनके रहते हुए होने वाले कर्म हैं। इनका परिणाम ही पुनर्जन्म का कारण तथा आयु भोग होता है। अत: चित्त में विषयों का आलम्बन होता है। वासनायें इनके सम्बन्ध से ही संचित होती रहती हैं। योगसाधनाओं द्वारा विवेकज्ञान से अविद्या का नाश हो जाता है, तब कर्मों में फल देने की शक्ति नहीं रहती तथा चित्त अपने कारण में विलीन हो जाता है। अत: फल, आशय हेतु और आलम्बन का इन चारों का अभाव होने से वासनायें स्वत: ही नष्ट हो जाती हैं तथा प्राणी पुनर्जन्म प्राप्त नहीं करता। यह ही प्राणायाम के रहस्य बतलाये गये हैं। अत: प्राणायाम करने से अवश्य ही संस्कार शुद्ध होते हैं।

परम पूज्य श्री सद्गुरु जी भगवान के पावन चरणों में कोटि–कोटि प्रणाम सहित।

मानसिक संतुलन

मानसिक विश्राम के बाद शारीरिक क्रिया होती है। शरीर सदा मन का अनुगामी होता है। मन में संकल्प उठता है इसके बाद ही शरीर द्वापरा क्रिया आरम्भ होती है। शुद्ध चित्त में पवित्र संकल्प या विचार आते हैं और अशुद्ध चित्त में बुरे संकल्प या विचार आते हैं। मन शरीर रूपी यन्त्र का संचालक है। मन या चित्त को शुद्ध रखने पर वही सही मार्ग पर चलेगा। इसलिए शरीर शुद्धि की अपेक्षा चित्त शुद्धि का महत्व अधिक है। चित्त शुद्धि के बाद शारीरिक स्वास्थ्य का सुधार स्वत: स्वाभाविक रूप से हो जायेगा।

चित्त को शान्त एवं प्रसन्न रखने की दृष्टि से मानसिक आहार के रूप में हमें पाँचों ज्ञानेन्द्रियों की शुद्धि करनी होगी। कान से अच्छी बातें सुनें, भजन सुनें, आँख के द्वारा भी महान पुरुषों की जीवनी पढ़ें, सत्दृश्य का अवलोकन करें, मन में अच्छे विचारों को स्थान दें तथा बुरे विचारों त्यागें। तभी चित्त शुद्धि की प्रकिया प्रारम्भ होगी।

खोज निकाली श्री विष्णु की शेष शैया

डा. जे.पी. शर्मा, पौंटा साहिब (हि. प्रदेश)

हमारे धार्मिक ग्रन्थों में श्री विष्णु जी की शेष शैया का विस्तार से वर्णन किया गया है। कहा गया है श्री विष्णु भगवान लक्ष्मी सहित शेष नाग की शैया पर रहते हैं। इस धरती को श्री शेष नाग ही अपने फनों पर रखे हुए है। महा प्रलय में जब सब जगह अथाह जल ही जल होता है तब भगवान शेष की शैया पर रहा करते हैं। अमेरिकी तथा फ्रांस के वैज्ञानिकों ने संयुक्त रूप से शोध करके दुनिया के सामने हिन्दू धर्म ग्रन्थों के इस कथन को प्रमाणित कर दिया है कि समुद्र की गहराइयों में भगवान शेष नाग की शैया है। वैज्ञानिकों ने इसे 'सर्पेण्टाइल रौकस' अर्थात् सर्पाकार चट्टान कह कर संबोधित किया है। यह कुण्डलीदार चट्टानें 200 किलोमीटर की गोलाई में फैली पाई गई है। एक के ऊपर एक कुण्डलीकार रूप से शेष की शैया बनाये हुए है। समुद्र में 60 किलोमीटर की गहराई से 200 किलोमीटर की गहराई तक ये चट्टानें फैली हुई है। इन्हीं की नरमी के कारण प्राय: चट्टानों की परतें खिसकने के कारण पृथ्वी डोलती है जिसे भूकम्प कहते हैं। समुद्र में चट्टानों के कम्पन से ही सुनामी जैसी घटनायें होती है। अमेरिकी विज्ञानियों ने लगभग 27 वर्ष पूर्व शोध आरम्भ किया था। सोलह वर्ष से फ्रांस के वैज्ञानिकों ने भी शोध में सहयोग दिया है। उन्होंने निष्कर्ष दिया है कि पृथ्वी की इन्हीं कुण्डलीनुमा चट्टानों के खिसकने के कारण भूकम्प तथा सुनामी की घटनायें होती हैं। धरती के भीतरी सतहों में भी ऐसी चट्टानें परतों के रूप में विद्यमान है तथा लगभग 2000 कि.मी. तक फैली हुई हैं। जर्मनी के वैज्ञानिकों ने भी शोध में बतलाया है कि पृथ्वी के केन्द्र से 2000 कि.मी. तक परताकार चट्टानें फैली हुई है। तीनों देशों के विज्ञानियों ने हमारे धार्मिक ग्रन्थों की सच्चाई को प्रमाणित किया है। श्री मद्भागवत् तथा पुराणों में लिखा है कि भगवान शेष जब करवट बदलते है तब पृथ्वी हिलती है। शेषनाग के भार के कारण धरती की पर्ताकार चट्टानें अपनी जगह से खिसकती है उन्हीं के कारण भूकम्प आता है।

हमारे धार्मिक ग्रन्थ महज ग्रन्थ ही नहीं हैं वरन् बड़े–बड़े 'शोध ग्रन्थ' (थीसिस) हैं। हमारे पूर्वज महान विज्ञानी थे। उनकी महानता को हम भुला बैठे है। पुराणों, वेदों पर हमें शोध करने की आवश्यकता है। अपने धर्मग्रन्थों में सृष्टि का सार छिपा हुआ है। कैसी विडम्बना है कि हम दूसरे देशों से प्रमाण मांगने जाते हैं। यह कहावत सच ही है–

'बगल में छोरा नगर में ढिंढोरा'

सद्गुरु परमशक्ति के साकार विग्रह

अवनीश भटनागर, सहारनपुर

श्री गुरुदेव कौन–

योग दर्शन में भगवान पतंजलिदेव कहते हैं–

पूर्वषामपि गुरु कालेनानअवच्छेदात्

वह सदा से रहने वाला गुरु तत्व काल से बन्धित नहीं है अर्थात् काल की सीमाओं से वह बाहर है और स्वतन्त्र ईश्वरीय तत्व ही है। महात्मा कबीर साहब कहते हैं–

गुरु गोविन्द तो एक है, दूजा यहु आकार

श्री सद्गुरु देव और गोविन्द (भगवान) कोई दो वस्तु नहीं वरन् एक ही है। कभी वह सर्वशक्तिमान परब्रह्म तत्व गोविन्द (भगवान) रूप में प्रकट होता है तो कभी अतिकृपा करके गुरु रूप में, बस दूजा तो यह मानव शरीर ही है। वास्तव में तो मानव शरीर में परब्रह्म तत्व का प्रकाश आत्मा के रूप में रहा करता है। श्री तुलसी जी ने कहा भी है **'ईश्वर अंश जीव अविनाशी'** जब भगवान की परम कृपा जीव पर होती है उस समय वह परम गुरुदेव की शरणजीव को प्राप्त कराते हैं,ऐसे ही श्री गुरुदेव की चरण शरण प्राप्त नहीं होती श्री कबीर कहते हैं **'जब गोविन्द कृपा करी तब गुरु मिल्या आई'**। श्री रामचरित मानस में **'बिनु हरि कृपा मिलै नहि संता।**

श्री शिव पुराण में भगवान शिव ब्रह्माजी से कहते हैं कि 'कर्म से बंधे हुए जीवों की रचना मैं नहीं करूंगा मैं तो गुरु का रूप धारण करके इनको भव बन्धनों से मुक्त करके अमर पद प्रदान करूंगा,

आगे भगवान शिव वायवीय संहिता में कहते हैं "जो गुरु है वही शिव कहा गया है जो शिव है वह गुरु माना गया है। विद्या के आकार में शिव ही गुरु बनकर विराजमान हैं। जैसे शिव हैं वैसी विद्या है जैसी विद्या है वैसे गुरु हैं। शिव विद्या, गुरु के पूजन से समान फल मिलता है। शिव सर्व देवात्मक है और गुरु सर्वमन्त्रमय।" साधारण भाषा में– वह परम ज्योति धरती पर प्रादुर्भूत हो तप स्वाध्याय के करते–करते आत्मशोधन के मार्ग में इतनी आगे बढ़ जाये कि साक्षात्कार करके परब्रह्म की तद्रूपता को प्राप्त करते हुए अपने शुद्ध स्वरूप में अवस्थित हो जाये और समस्त मल–मैलों को जो जन्मान्तरों से उसके कर्माशय में जमा पड़े थे उनको दग्ध करके शुद्ध और बुद्ध हो गया हो उस ज्योतिर्मय रूप को ही सद्गुरु कहते हैं। फिर उस आत्म ज्योति ने कैसा ही शरीर धारण कर रखा हो वही सद्गुरु के रूप में पूजित हो जायेगा।

जहाँ तक देवी और देवताओं की बात है उनके अधिकार सीमित है वह स्वर्ग– सुख,

सम्पत्ति, पुत्र, यश आदि–आदि दे सकते हैं परन्तु सद्गुरु की भाँति विशेष कृपादान नहीं दे सकते। ब्रह्मचारी गोपालानंद जी ने जब माता श्री महाकाली जी से कहा कि माता मैंने आपको नहीं बुलाया फिर भी आपके दर्शन हो रहे हैं। वह बोली कि सद्गुरु कृपा से मैं तुम्हारे सामने हूँ श्री गोपालानन्द जी ने कहा माता मेरे गुरुदेव की कृपा ही मुझे वरदान में दे दो तो माता महाकाली जी ने कहा नहीं यह मैं नहीं दे सकती यह तो वही दे सकते हैं मैं तो धन, यश, पुत्र, पद आदि संसारी वस्तुएँ दे सकती हूँ। श्री हनुमान चालीसा में जिस समय संत तुलसीदास जी जब कृपा की याचना करते हैं तो न तो अपने इष्ट श्री राम जैसी कृपा माँगते हैं और नही जिनका चालीसा लिख रहे हैं उनके जैसी वह तो कभी न खत्म होने वाली अति विलक्षण सद्गुरु की कृपा की याचना करते हैं कि यदि देनी हो तो श्री गुरुदेव जैसी कृपा दीजिये '**कृपा करहु गुरुदेव की नाई**' श्री हनुमान चालीसा के प्रारम्भ में भी बड़ी सुन्दर बात कहते हैं '**श्री गुरुचरण सरोज रज निज मन मुकरि सुधार, वरनऊ रघुवर विमलयश जो दायक फलचारि**' अर्थात् श्री सद्गुरु देव जी के श्री चरणों की जो धूल है उससे अपने मन के दर्पण को रगड़ कर साफ करके सारे गन्दगी के आवरण को साफ कर ले और फिर उसमें ध्यान के द्वारा सारा दृश्य देखकर श्री रघुवर भगवान श्री रामचन्द जी का पावन यश यानि लीला चरित्रों का वर्णन कर जो चारों फलों का देने वाला है। प्रमाण तो और बहुत हैं पर संक्षेप में बस इतने ही–

श्री–श्री सद्गुरु देव का संसार में दिव्य रूप से आना– हालांकि वह परम शक्ति अजन्मा व अविनाशी कही गई है परंतु फिर भी वह अपनी योग माया से प्रकट हुआ करती है। गीता में भगवान कहते हैं। '**अजोऽपिसन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपिसन्। प्रकृतिस्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥**' अर्थात् मैं अजन्मा और अविनाशी रूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियों का ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृति को आधीन करके अपनी योग माया से प्रकट होता हूँ आगे कहा है ''**यदा–यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः अभ्युधानमधर्मस्य तदात्मानंसृजाम्हम्।**''

परम शक्ति एक ही है उसके समय–समय पर अनेक रूप हो जाया करते हैं– '**एकोऽहंबहुस्याम**' इनमें सामर्थ्य के अनुसार भेद रहा करता है या छोटे बड़े कहे जा सकते हैं जैसे श्री राम बारह कला सम्पन्न व श्री कृष्ण 16 कला सम्पन्न व परशुराम चार कला अवतार, अन्य अवतारों के विषय में भी कहा है। '**ऐतेचाअंशकला पुरुषः कृष्णस्तुभगवानस्वयं**'' श्री कृष्ण के अलावा शेष जितने भी अवतार हैं वह सब सर्वशक्तिमान की अंशकलाओं को धारण करने वाले पुरुष ही थे। परंतु श्री कृष्ण परिपूर्ण ब्रह्म स्वयं भगवान ही थे। श्री रामलाल महाप्रभु जी के समय में एक बात गाँधीजी के विषय में आई थी तो श्री महाप्रभु जी ने बताया। वह 'कलात्रयम' तीन कला अवतार है। बिना ईश्वरीय सहारे के कोई भी मानव संसार में बड़े कार्य नहीं कर सकता और अति विशेष कार्य तो वह परमशक्ति स्वयं प्रादुर्भूत होकर स्वयं

किया करती है 'परित्रानाय साधूनां विनाशायचदुष्कृताम, धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।' कभी उसका रूपक राजाओं जैसा श्रृंगारी होता है। जैसे श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि। कभी वह वीतरागी अवधूत वेष में रहते हैं जैसे सनकादिक सिद्धशुकदेव मुनि, व्यास, बुद्ध आदि।

योगिश्वर श्री रामलाल महाप्रभु जी के रूप में भी वही परब्रह्म अनादि सर्वशक्तिमान परमशक्ति आकर प्रादुर्भूत हुई बाह्य रूपक इनका सद्गुरु का रहा है और अन्दर परमशक्ति वही कार्य कर रही है। इनका नाम व रूप अति साधारण है परंतु वास्तव में शक्ति परम अनन्त है। जो कार्य देवी–देवताओं के अधिकार से बाहर की बात है वह योगिश्वर श्री रामलाल महाप्रभुजी के स्मरण मात्र या उनके बताये मार्ग का अनुसरण करके तत्काल बन जाया करते हैं। यह उनके लाखों बालकों का प्रत्यक्ष अनुभव है।

योगिश्वर श्री रामलाल महाप्रभुजी का इस अवनि मण्डल पर प्रादुर्भाव, उपस्थिति और प्रयाण सभी अति आश्चर्यमय एवं अति विलक्षण व दिव्य है। योगिश्वर श्री रामलाल महाप्रभुजी के प्रादुर्भाव के विषय में नौ लाख वर्ष पूर्व काकभुशुण्डी जी महाराज ने काकनाड़ी ग्रन्थ में भविष्यवाणी की थी कि सर्वशक्तिमान, सर्वआधारभूत महाशक्ति का प्रादुर्भाव रामलाल जी के रूप में होगा। उनकी उपस्थिति के समय लाखों परम दिव्य लीला चरित्र घटते रहे जो सामान्य रूप से हो ही नहीं सकते पर उनकी महति कृपा से सब संभव हो गये। उनका प्रयाण अनेकों दिव्य लीलाओं का साक्षी रहा। वह शरीर छोड़ने के बाद तुरंत ही अनेक शरीर धारण करके अपने शिष्यों के सामने प्रकट हो गये और आज भी उनके दर्शनों की दिव्य घटनायें प्रायः घटती रहती हैं। गीता में भगवान कहते हैं– '**जन्म कर्मचमे दिव्यमेवंयोवेत्ति तत्वतः, त्यत्वादेहं पुनर्जन्मनैतिमामेतिसोऽर्जुन।।**' अर्थात् परम तत्व के जन्म और उसके कर्म या कार्य सब परम दिव्य अर्थात् अलौकिक होते हैं। साधारण नहीं जो मनुष्य इस बात को तत्व से जान लेता है वह शरीर को त्यागकर पुनः जन्म मरण के चक्कर में नहीं पड़ता वरन् मुझे ही प्राप्त होता है।

संस्कारी आत्माओं का आकर्षण करना व लीला का पात्र बनाना– जब परम शक्ति संसार में प्रादुर्भूत होती है तो उसके संस्कारियों का जन्म भी संसार में होता है। वह परम शक्ति शरीर धारण करने के बाद जब अपने संस्कारियों को देखती है तो उन्हें अपनी ओर आकर्षित करती है, उन्हें अपनी ओर आने को प्रेरित करती है। जैसे दीपक प्रज्जवलित होने के बाद पतंगे को आकर्षित करता है जबकि उन संस्कारियों को तब तक यह आभास नहीं होता कि हमारे उद्धारक कौन और कहाँ हैं तथा हमारा जन्म यहाँ क्यों हुआ है। सद्गुरु शक्ति उनको अपने पास चले आओ–चले आओ प्रेरित करती रहती है और कभी–कभी दिव्य शक्ति प्रेषित करके मार्ग प्रशस्त भी करती है जैसे योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी को हमारे पास चले आओ स्वप्न में कहकर ऋषिकेश बुला लिये थे और दिव्य शक्तिपात देकर निहाल करके अपना स्वरूप बनाकर सद्गुरु परम पद प्रदान कर दिया था। स्वामी मुलखराज जी को भी कांग्रेस के जुलूस

ने देखकर आकर्षित कर दिया था और 9 साल के संस्कार 9 दिन मे कटवाकर अपनी शरण में बुला लिये थे। ऐसे अनगिनत संस्कारियों को आकर्षित करके अपने पास बुलाया और निहाल करके जीवन धारण करने का उद्देश्य पूर्ण करा दिया और साथ ही जगत का कल्याण करने वाला बना दिया।

योगिश्वर श्री महाप्रभु रामलालजी का अपने शरणागत बालकों को तीव्र शक्तिपात देकर उनका आत्मउत्थान कर साक्षात्कार क्रराके तत्वविजयी बना करके हिमालय में बैठाकर कैवल्य साधना में लगा दें जहाँ वह जन्म मरण से मुक्त होकर अपने स्वरूप में अवस्थित रहे और त्रिलोकी में जो चाहे सो करता रहे और यदि चाहे तो संसार को सद्गुरु रूप में प्रकाश प्रदान कर आलोकित करता रहे और जब चाहे तो अपने पंचभौतिक शरीर को त्याग चिन्मय रूप हो भगवान बन जाये और यदि किसी कारण से साधक अवस्था में शरीर छूट जाये और सिद्धावस्था को न पहुँच सके तो उसका किया योग बेकार नहीं जाता उसके लिए भगवान श्री कृष्ण गीता में कहते हैं ''**प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वती सम:। शुचिनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्ट अभिजायते**'' आगे भगवान कहते हैं–''**तत्र तं बुद्धि संयोगं लभते पैवदेहिकम, यततेचततोभूय: संसिद्धौ कुरुनंदन**'' अर्थात् पहले शरीर में संग्रह किये हुए बुद्धि संयोग को अर्थात् समबुद्धि रूप योग के संस्कार को अनायास ही प्राप्त हो जाता है और हे कुरुनन्दन उसके प्रभाव से वह फिर परमात्मा की प्राप्ती रूप सिद्धि के लिए पहले से भी बढ़कर प्रयत्न करता है।

जो पूरा योग नहीं कर पाते उनको योग भ्रष्ट कहते हैं। योगिश्वर श्री रामलाल महाप्रभु के ऐसे बालकों को बैकुण्ठ धाम दण्ड के रूप में मिलता है। बात तो यहाँ तक प्रमाणित है कि कम से कम श्री महाप्रभुजी के बालकों को स्वर्ग तो मिलता ही मिलता है। इसके उदाहरण गुरुदेव वचनामृत में देखें– जहाँ तक बैकुण्ठधाम दण्ड में मिलन वाली बात है तो योगिश्वर श्री रामलाल महाप्रभुजी के एक शिष्य थे योगिअमरनाथ जी, उनका विवाह जबरदस्ती साधक अवस्था में ही कर दिया गया था। विवाह के समय ही उन्होंने स्पष्ट रूप से सबके सामने कह दिया था कि बनना तो हमें था कुछ और बना दिया गया है हमें बैकुण्ठ वासी। जब उनके शरीर का अग्नि संस्कार किया जा रहा था तो शंख, घंटे, मृदंग की ध्वनि स्पष्ट रूप से सभी व्यक्तियों ने सुनी थी और जो ध्यान निष्ठ व्यक्ति वहाँ उपस्थित थे उन्होंने योगि अमरनाथ जी को एक दिव्य विमान में बैठे देखा जिन्हें पार्षद्गण शंख, मृदंग, घंटे की ध्वनि करते हुए बैकुण्ठधाम को ले गये।

योग भ्रष्ट जीवों को अन्य उत्तमोत्तम लोकों का करोड़ों वर्षो तक उपभोग करने को मिलता है या यह कहे कि उन्हें परम शक्ति के अगले प्रादुर्भाव तक उत्तमोत्तम लोकों में विश्राम देकर ठहराया जाता है। श्री गुरुदेव कहते थे कि अक्लमंदी तो इसी में है कि तुम इसी जन्म में योग की पूर्णता को प्राप्त कर लो। इसलिए प्रयत्न पूर्वक इसी जन्म में पूर्ण योगाभ्यास करके

श्री गुरुदेव जी के महान संकल्प से पूर्णता को प्राप्त करके लक्ष्य को पा लें। श्री कृष्ण भी गीता में कहते हैं '**प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगि संशुद्धकिल्विषः। अनेक जन्म संसिद्धस्ततो याति परां गतिम॥**' अर्थात् प्रयत्न करने वाला, अभ्यास करने वाला योगि तो पिछले अनेक जन्मों के संस्कार बल से इसी जन्म संसिद्ध होकर संपूर्ण पापों से रहित हो तत्काल ही परम गति को प्राप्त हो जाता है।

उपसंहार– योगिश्वर श्री रामलाल महाप्रभुजी एवं योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी के रूप में उस सर्वशक्तिमान परमब्रह्म का ही प्रादुर्भाव संसार में हुआ वह परम शक्ति हमें मानव भेष में मिली उसने हमारे सामने बैठकर ही हमारे कल्याण के कार्य किये हमने उनको छूकर देखा उन्होंने हमें छुआ साक्षात् भगवान सर्वशक्तिमान सद्गुरु के रूप में हमारे सामने बैठे रहे सारे क्रियाकलाप करते रहे। हम ऐसे भगवान को तो ढूढते हैं जिन्हें हमने नहीं देखा और जिन्हे प्रत्यक्ष देखा है उनको जरा सी देर में भूल जाते हैं और आडम्बर में ही लगे रहते हैं। उनको बिल्कुल भी नहीं पहचान सके अपना और उनका नाता भी भूल गये कि "पिता से माता सौ गुना करती सुत सौ प्यार माता से हरि सौ गुना हरि सौ गुरु सौ बार जो भगवान से भी सौ गुना अधिक प्यार अपने बालकों को करते हैं। और हमारी दशा देखो जहाँ हमें कोई बाबा, कथावाचक, देवशक्ति, तीर्थ आदि मिला नहीं कि बस दीवाने हो गये उसके अपनी अमूल्य सम्पदा 'श्रद्धा' को लुटा बैठे उसके ऊपर। अपने मन मन्दिर व गृह मन्दिर दोनों जगह उसे ही स्थान दे देते हैं और उनको तो बिल्कुल ही भूल जाते हैं जिन प्रभुजी ने हमारे दुःखों को दूर किया, हमारे रोग दोषों को हटाया, हमारे हर बिगड़े कार्य को संवारा हम उनको याद नहीं कर पाते वह आने से पूर्व ही सारे दुःखों को दूर कर देते हैं और हमें सर्वोच्च आध्यात्मिकता कृपा प्रसाद में देते हैं बदले में कुछ नहीं लेते।

कहाँ तक बतायें, हमें जो सर्वशक्तिमान सद्गुरु देव प्राप्त हुए हैं वह सदैव वंदन, आराधन, पूजन के योग्य है। भगवान शिव कहते है– '**ध्यानमूलंगुरुर्मूर्ति, पूजा मूलं गुरुंपदम मन्त्र मूलं गुरुंवाक्यं मोक्षमूलंगुरु कृपा**'।

कृपा लीला

जगदीश राय बंसल 'अधम', नई दिल्ली

दोहा:

लेखनी तेरी लेख भी तेरा, तेरा ही गुण गान।
मैं अधम समझ न सका, गाता है सकल जहान।।

योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्ध गुफा संवाई धाम से सम्बन्धित 67 वर्षीय एक साधक गुरु भाई का नाम श्री रामनारायण गुप्ता है। इनकी धर्मपरायण 62 वर्षीय पत्नी का नाम श्रीमती किशनी देवी है। अध्यात्मिक प्रेम से ओत–प्रोत यह हरियाणवी दम्पत्ती वर्षों से देश की राजधानी दिल्ली में निवास करते हैं। इसी महानगरी में इनको सन् 1971 में योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से दीक्षा ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

वैसे तो काल चक्र, युग चक्र और जग चक्र को एक साथ चलाने वाले त्रिकाल दर्शी भगवान श्री गुरुदेव जी महाराज असरण–शरण पर प्रति–पल अपनी कृपा वर्षा करते रहते हैं। भले ही जिनको समझना या पहचानना किसी के बूते की बात नहीं है, फिर भी कभी–कभी कोई घटना विशेष के अन्तर्गत किसी को अपने दयालु जी आभास करा भी देते हैं।

इसी प्रकार की एक घटना का कृपा प्रसंग आदरणीय गुरुभाई गुप्ता जी ने दिनांक तीन अप्रैल 2009 को राम नवमी के शुभ अवसर पर संवाई धाम में वर्णन किया। जो उन्हीं की तरफ से लिखना समीचीन होगा।

जानत है वो ही जानन हारा।
रक्षक है सब का प्रतिपाला।।

यह जीवन रक्षक कृपा प्रसंग सन् 1973 का है। अपने सर्व समर्थ्य गुरु देव जी महाराज द्वारा ऋषिकेश आश्रम में गंगा दशहरा बड़ी धूम–धाम से मनाया गया। उत्सव के कार्य सम्पन्न होने के पश्चात्, हमने ऋषिकेश के दिव्य मन्दिरों का दर्शन लाभ लेने का मन बनाया। इसी उद्देश्य से मैंने श्री चरणों में निवेदित किया कि गुरु जी हम ऋषिकेश के मन्दिरों का आनन्द लेना चाहते हैं। श्री मुख ने कहा, 'लल्ला अच्छी बात है, तुम भोजन के उपरान्त चले जाना।'

अपने डेरे पर लौटते समय मैंने सोचा कि भोजन में तो अभी देर है। तब तक कुछ देख आते हैं। परिणामतः अपनी भार्या श्रीमती किशनी देवी, पुत्र सतीस (8 वर्ष), पुत्र बसन्त (6 वर्ष) पुत्र नार भूषण (4 वर्ष), पुत्र सुनील 2 वर्ष और साथ पधारी बहिन तथा दो बहिन के बच्चों

सहित हम चल दिए। कई मन्दिरों की दर्शन कमाई करके हम एक टैक्सी द्वारा आश्रम में लौटने के लिए रवाना हुए। उर्दू के एक शायर ने लिखा है–

'होता वही है, जो खुदा मन्जूरे होता है।'

परन्तु अपने एक परम आदरणीय गुरुभाई ने कहा है–

मेरे प्रभू सवाई वाले, सब का दु:ख हरते हैं।
सिद्ध गुफा है धाम मगर, सबके दिलों में रहते हैं।।
बच्चे किस हाल में हैं, वे देखते रहते हैं।
बच्चों के भावों को, वे पूरा करते रहते हैं।।

बच्चों के साथ मनो विनोद के मध्य अचानक एक घटना घटी जैसे ही हमारी टैक्सी श्री लक्ष्मण झूला पार कर रही थी, पीछे से एक मिन्नी बस ने कार को टक्कर दे मारी। टक्कर के धमाके के साथ टैक्सी अनियन्त्रित हो गई और गंगा मैया की मुख्य धारा में गिरने से बाल–बाल बची। उन दिनों पुल पर साईड रेलिंग नहीं लगी हुई थी। हमारे होश उड़ गये। शनै:–शनै: हम टैक्सी से बाहर निकले। बस ड्राइवर और टैक्सी ड्राइवर आपस में उलझ पड़े।

लीला धारी की लीला न्यारी।
देख देख दुनियां हारी।।

तत्काल एक और टैक्सी हमारे पास आ कर रुकी। इस टैक्सी का ड्राइवर हम से बोला, 'आपको तो आश्रम में जाना है न? आओ बैठो, ये (दोनों ड्राइवर) अपना फैसला अपने आप करते रहेंगे।' किं कर्तव्य विमूढ़ की स्थिति में हम दूसरी टैक्सी में सवार होकर सकुशल आश्रम में पहुँच गए। कहते हैं–

मेरे दाता के दरबार में, सब दु:ख दर्द मिटाए जाते हैं।
दुनियां के सताए लोग यहाँ, सीने से लगाये जाते हैं।।

आश्रम में प्रवेश कर सर्वप्रथम हम प्राणदाता त्रिलोक पावन अखिल ब्रह्माण्ड नायक के श्री चरणों में उपस्थित हुए। अन्तर्यामी उस समय वर्तमान कार्य सम्पन्न कर अपने कक्ष में ऊपर जा रहे थे। हम भी पीछे–पीछे वहीं जा पहुँचे। दिल में घबराहट थी। हमने दण्डवत् प्रणाम किया। इससे पहले कि हम कुछ बोल पाते, श्री मुख ने कहा, 'बच गए लल्ला? श्री प्रभु जी को कितना जोर लगाना पड़ा। कभी टैक्सी को रोकते, कभी बस को रोकते अन्यथा तुम टैक्सी सहित गंगा में बहते। तुमको कहा था भोजन उपरान्त चले जाना..................।'' मैं निरुत्तर हो गया। काटो तो खून नहीं। हम चुप–चाप नीचे आकर भोजन करने के लिए बैठ गए। इस प्रकार अनाथ नाथ ने हमारी जीवन रक्षा कर दी। अन्यथा मौत के मुख में चले गए होते।

इस प्रकार गुरुदेव जी महाराज अपने शिष्यों पर तरह–तरह से कृपाएँ करते रहते हैं। हम पर भी कल्याण धन की अनेक होती आ रही हैं। भोजन प्रसाद से सम्बन्धित ही एक

चमत्कार मेरे साथ और हुआ। आईए– सवाई धाम चलते हैं:–

आया राम नवमी का त्यौहार.....त्यौहार,

मनैं सवाई धाम को जाना है।

वहाँ लगे खुला दरबार.......दरबार,

मनै चरणों में शीश नवाना है।।

बात सन् 1985 की है। सवाई धाम में पतित पावन आनन्दकन्द गुरुदेव महाराज जी द्वारा जगतात्मा त्रिजग पावन योग योगेश्वर महाप्रभु दादा श्री रामलाल जी महाराज का पावन प्राकट्य दिवस रामनवमी महोत्सव बहुत जोर शोर से मनाया गया। अधिकतर आगन्तुक गुरुभाई बहिन उसी दिन अर्थात् नवमी के दिन अपने–अपने गन्तव्य को प्रस्थान कर गए थे। शेष भाईयों में से कुछ अगले दिन जाने वाले थे। इनमें से स्वयं हम भी थे। तेज धूप और तपती गर्मी से बचने के उद्देश्य से हमने शीघ्र चलना श्रेयकर समझा। अत: तुरन्त ही एत्मादपुर बस स्टैन्ड पर पहुँच कर आगरा/दिल्ली जाने वाली बस का इन्तजार करने लगे। आश्चर्य, महान आश्चर्य कि हम लगभग तीन घन्टे तक बस की प्रतीक्षा में लगे रहे, मगर बस नहीं मिली। कारण यह बना कि कोई बस तो बिना रुके चली जाती थी। कोई बस रुक तो जाती मगर भीड़ इतनी कि पैर रखने की जगह ही नहीं। परिणामत: थकावट, भूख–प्यास से व्याकुल पसीना पौंछते हुए हम वापिस सवाई आश्रम में ही लौट आए।

भाग्यविधाता अराध्यदेव गुरु जी महाराज अपने आसन पर विराजमान थे। हमारे दण्डवत प्रणाम करने से पहले ही अकारण दयालु पहले तो हँसे, फिर बोले, अच्छा लल्ला दिल्ली जाकर आए? ठीक है, ठीक है (दाया हस्त हिला हिलाकर) कोई बात नहीं। अब लल्ला पहले तुम भोजन करो।'' सर्व समर्थ्य महाराज जी के आदेश से हम भोजन करने के लिए तो चल दिए, मगर इस समय त्रिलोकी नाथ की मुद्रा देख कर मुझे सन् 1973 की ऋषिकेश की उपरोक्त घटना के विषय में कहे शब्दों की मुद्रा ताजी हो आई। मन में तरह–तरह के विचार उछलने लगे। जैसे:– किसी ने सच कहा है:–

जिन ढूंढा तिन पाईया, गहरे पानी पैठ।

मैं बपूरा डूबन डरा, रहा किनारे बैठ।।

असल में मैंने अपने तरण तारण को समझा ही नहीं। आरती में नित गाते हैं कि:–

गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु, गुरु देवो महेश्वर:।

गुरुरेव परब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नम:।।

अभी तक इन पंक्तियों का मैं शब्दार्थ तो जानता था मगर भावार्थ का मैंने कभी प्रयत्न ही नहीं किया। उन दिनों मैंने किसी गुरु भाई को भी इस प्रकार की चर्चा करते नहीं सुना। हो सकता है यह भाग्य विधाता की ही इच्छा रही हो। यह सब मनन करते–करते

अनायास ही कह उठा:—

गुरुजी कुछ ऐसा इन्तजाम हो जाय।
मेरी जुबां पै सदा तेरा नाम हो जाय।।

इसी उधेड़ बुन के मध्य हमने सिद्धेश्वर भगवान जी से, हमने दिल्ली लौटने की आज्ञा ली। लीला धारी की लीला देखिए कि हम जैसे ही आश्रम के सामने सड़क पर पहुँचे, एक ताजी बस आई मानो हमारे लिए ही आकर रुकी है। यह बस बरहन से आगरा जा रही थी। हम बस में सवार हो गए। अब मन में बार—बार यही आता रहा कि भोजन प्रसाद लेकर ही आज्ञा लेनी चाहिए।

गुरु चरणों में जिसकी उमंग है।
उसकी रग रग में योग तरंग है।।

शोक संवेदना

▪ बड़े दु:ख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि हमारे पुराने गुरुभाई कानपुर निवासी श्री हरि प्रसाद शुक्ला का 28 मई की रात को बदमाशों ने चाकू मार कर हत्या कर दी है। वे एक कम्पनी में दरबान थे। रात्रि दो बजे बदमाशों ने कम्पनी का बलात दरवाज खुलवाया, उनके शोर मचाने पर उसे मार दिया। इससे कानपुर समेत सभी गुरुभाईयों में अत्यन्त दु:ख व्याप्त है। सिद्धयोग परिवार के सभी साधक इस दु:ख की बेला में शोक संतप्त परिवार की हार्दिक संवदेना प्रेषित कर रहा है। प्रभु इस महान दु:ख को सहन करने की शक्ति दें।

▪ इन्दौर निवासी श्री सज्जन सिंह सिसौदिया का विगत 23 मई को देहावसान हो गया है। वे आश्रम के पुराने साधकों में से थे। श्री गुरुदेव इन्हें अपने अभय चरणों में स्थान दें तथा परिवार के दु:खी व्यक्तियों को इस दु:ख को सहन करने की ताकत दें।

जय गुरुदेव!

—सम्पादक 'सिद्धयोग'

साधकों के लिए

रामेश्वर खण्डेलवाल, गंगापुर सिटी

ध्यान का प्रयास करने वाले साधकों को ध्यान साधना करने से पहले तैयारी कर लें जिससे उनको साधना में किसी तरह की रुकावट न हो। साधना में आनन्द भी आने लगे। ज्यादातर साधक कुछ ही दिनों में साधना मार्ग से दूर हो जाते हैं। कई तरह की शिकायतें करने लग जाते हैं। पहली शिकायत होती है कि हमारा मन थोड़ी देर बाद ही इधर–उधर भागने लगता है। हमारे पैर दर्द करने लग जाते हैं। स्थिर नहीं बैठ पाते। हमारा शरीर इसके काबिल नहीं है। इस तरह की कई शिकायतें नये–नये साधकों को होती रहती हैं।

शरीर को साधना के लायक बनाने के लिए हमें कुछ व्यायाम करना चाहिए। जीवन तत्व साधन में जो आसन है ध्यान में बैठने से पहले उन आसनों को करना चाहिए जिससे हमारा शरीर का भारीपन दूर होगा, शरीर की सुस्ती दूर होगी, शरीर की माँस पेशियां, नाड़ी आदि लचकीली बनेगी जिससे शरीर हल्का महसूस होगा और बैठने में आराम मिलेगा। शरीर में थकान भी नहीं होगी।

मन की चंचलता के बारे में तो अर्जुन ने भी भगवान कृष्ण से पूछा था कि भगवन मन को काबू में करना बहुत मुश्किल का काम है। पल–पल में इधर–उधर दौड़ता रहता है। क्योंकि ये उसका स्वभाव है। इस स्वभाव को बदलने के लिए भगवान श्री कृष्ण ने दो उपाय बताये– अभ्यास और वैराग्य। बार–बार इसको अपने लक्ष्य पर लगाना, ये साधन हमें करना पड़ेगा। मन अपनी उछल कूद मचायेगा लेकिन हमें उसकी उछल कूद बन्द करने का प्रयास करना ही पड़ेगा तब जाकर ध्यान योग के साधक बन सकते हैं।

जैसे बिगड़ेल घोड़ा होता है। जो सवार को अपनी पीठ से गिरा देता है। लेकिन उस बिगड़ेल घोड़े को अच्छा होशियार सवार काबू में कर लेता है। उसको अपने अथक प्रयास से अपने वश में कर लेता है। वो घोड़ा सवार को लेकर इधर–उधर उछल कूद करता है उसको गिराने की कोशिश करता है लेकिन होशियार घुड़सवार अपने होशियारी से अपनी कोशिश से उसको अपने वश में कर लेता है। अब वो घोड़ा उसका गुलाम हो जाता है। वो अब अपने सवार के कहे अनुसार चलता है। सवार जहाँ चाहे उसे ले जाता है जब चाहे जिस स्थान पर उसको रोक लेता है। ठीक इसी प्रकार हमें भी अपने मन को अपने अथक प्रयास से अपने वश में करने की कोशिश करनी है। हताश होकर हार मान कर अपने लक्ष्य से दूर नहीं होना है और एक दिन मन हमारा गुलाम हो जायेगा।

ध्यान में सफलता लाने के लिए हमें गुरुदेव भगवान बार–बार अपने प्रवचनों में बताते

रहते हैं। उनके बताये मार्ग को भी हमें अपनाना होगा। उनके वचनों को अपने जीवन में उतारना है।

गुरुदेव द्वारा दिये गये कुछ सुझाव

1. सबसे पहले हमें यह दृढ़ निश्चय करना है कि हम ध्यान साधना में नियमितता रखेंगे। नित्य प्रतिदिन हमें साधना करनी है। इसमें हमें कभी अनुपस्थित नहीं रहना है। इसकी भी हमें दैनिक कार्य का एक महत्वपूर्ण अंग बनाना है। जैसे नित्य भोजन करते हैं, नित्य स्नान करते हैं वैसे ही इसको भी नित्य के कार्यक्रम में सम्मिलित करना है। जैसे शरीर के लिए भोजन की आवश्यकता है वैसे ही आत्मा को भजन की आवश्यकता है। साधना को भी आवश्यक कार्य मान कर अपने दैनिक दिनचर्या में अपनाना है। कई लोग बहाने बाजी करते हैं कि समय ही नहीं मिलता कैसे साधना करें। तो ये सब बहाने बाजी है। चौबीस घन्टे में क्या हम एक घंटा भी इसको नहीं निकाल सकते। प्रातः काल पांच बजे तक सोते रहते हैं। क्या उस वक्त उठ नहीं सकते? हमारा दैनिक कार्य चाहे वह दुकानदारी है या नौकरी से सब काम नौ बजे के बाद ही शुरू होते हैं तो उसके पहले कौन सा काम होता है? ये बहाने बाजी टालना है और प्रातः एक घन्टा साधना के लिए निकालना है।

2. अगला सबक है–नियत समय। साधना के लिए नियत समय का होना बहुत जरूरी है। अगर हमें पाँच बजे साधना में बैठना है तो रोज ही पांच बजे बैठना है ये नहीं कि आज पाँच बजे बैठ गये, कल छः बजे बैठ गये। ये गलत है। इसके लिए नियत समय जरूरी है। वैसे तो प्रातः और रात्रि को साधना में बैठने के लिए रामदेव बताया करते हैं। प्रातः काल का समय बहुत अनुकूल समय होता है इस समय वातावरण बिल्कुल शान्त होता है। ऐसे शान्त वातावरण में साधना करना बहुत अच्छा रहता है। इस समय हमारा मन भी शान्त ही रहता है। रात भर जब हम सोते हैं तो मन भी विश्राम में रहता है दिन में सांसारिक उलझनो में व्यस्त रहता है लेकिन प्रातः सो कर उठने के बाद वो बिल्कुल शान्त रहता है ऐसे में हमें ध्यान करना उचित रहता है। इनके अलावा जो सिद्ध पुरुष जो देवलोक में रहते हैं उनका सूक्ष्म शरीर प्रातः काल पृथ्वी के ऊपर घूमते रहते है और जो भी साधक इस समय में साधना करता है उनको वो आशीर्वाद भी देते हैं।

3. जिस प्रकार साधना के लिए नियत समय की आवश्यकता है, उसी प्रकार एक निश्चित स्थान की भी आवश्यकता है। आश्रम हो या मंदिर इनमें बैठकर साधना करने में बहुत बड़ा लाभ है। वहाँ की हवा भी पवित्रता लिए हुए बहती है। वहाँ के कण–कण में ईश्वरीय भाव रहता है। जहाँ बैठकर ध्यान में अपने आप साधक का मन ईश्वर की ओर हो जाता है। ईश्वरीय भाव उस साधक में अपने आप पैदा हो जाते हैं। परम शान्ती का अनुभव होने लगता है।

अपने घर में आप ऐसा वातावरण पैदा कर सकते हो। घर में एक कमरा साधना के

लिए बनाओ। जिसमें प्रभुजी का गुरुदेव का स्वरूप विराजमान करो। चाहो तो अन्य देवी–देवता का स्वरूप जैसे शंकर, राम, कृष्ण आदि के स्वरूप भी वहाँ लगा सकते हो। प्रातः रात्रि को वहाँ अपने परिवार के साथ आरती पूजा करो, भजन कीर्तन करो। उस जगह पर शान्ती बनाओ तब वहाँ साधना करो। घर भी मंदिर बन सकता है वहाँ रहने वालों को अपना व्यवहार, अपने विचार, आपसी भाव बदलने है।

4. आध्यात्मिक जीवन में अच्छे संग और भले सम्पर्कों की महत्ता बहुत अधिक है। साधक को कुसंग से बचना है। बुरे लोगों से बुरी जगहों से अपने को बचाके रहना है। क्योंकि वातावरण का मन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। वैसे तो साधकों को बेकार की बातों से दूर ही रहना चाहिए। हो सके तो समय निकाल कर आपस में मिल बैठ कर सतसंग करना चाहिए। अच्छे साहित्यों का अध्ययन करना चाहिए। क्योंकि हमारे मन मस्तिष्क में हर कार्य कलापों की एक छाप बैठ जाती है। जो ध्यान साधना के समय अपने मानस पटल पर घूमती रहती है। जिस दिनचर्या से हम गुजरते हैं वो ही हमारे मन में बार–बार आते रहते हैं। अतः हमको संगदोष से बचना चाहिए।

5. ध्यान मे बैठने के बाद कुछ देर अपने आपको शान्त करें। थोड़ी देर मन को भी मौन दें। एक दम शान्त कोई भाव नहीं आए। फिर मन ही मन गुरुदेव को नमन करें। ओम का उच्चरण करें और एक दम शान्त हो जाएं। ऐसा अनुभव करें कि इस समय मैं संसार में नहीं हूँ। मैं बिल्कुल अकेला हूँ। मेरा दुनिया से या दुनिया वालों से इस समय कोई वास्ता नहीं है। मैं केवल अपने परम पिता के सानिध्य मे बैठा हुआ हूँ। अपने मन से संसार को निकाल दो। जगत को निकाल कर जगदीश को बिठा दो। अपने मन को अपने गुरुमंत्र में लगा दो। मन यदि काबू में न आये तो बोल–बोल कर मंत्र जाप करो और उसमें, उन शब्दो मे अपने मन को लगादो। एक घंटा बाद मंत्र जाप के साथ ध्यान लगाओ। अपने गुरुदेव के बताये अनुसार अपने इष्ट का ध्यान करो। अपने मन में छिपी वासना, आवेश कामनाओं को धीरे–धीरे दूर करने की कोशिश करेंगे। ये जो हमारे शत्रु हैं वो हमारी साधना में रुकावट पैदा करते हैं। हम बैठेंगे ध्यान में, लेकिन हमारे अन्दर छिपी वासना हमको अलग ही सोच मे या ध्यान में ले जायेगी। अन्दर की कामना हमको बेचैन करती रहेगी। बार–बार हमारे मानस पटल पर वे सामने आती रहेगी। हम बैठे रहेंगे ध्यान में लेकिन हमारे मन में और ही उथल–पुथल चलती रहेगी। वहाँ गलत चित्रण पैदा होते रहेंगे।

यदि अपने में ऐसा कोई भाव छुपा है जो बार–बार हमारे मन में आता है तो उसको अपने से दूर रखो उसको आश्रय न दो। उसकी उपेक्षा कर दो। जैसे कोई बिन बुलाया मेहमान हमारे घर में आता है यदि हम उसका आदर सत्कार नहीं करेंगे तो वो दुबाराआना बन्द कर देगा और यदि हम उसको मान देना शुरु कर देगें तो वो आता रहेगा।

अपने अभ्यास को सतत निरन्तर लम्बे समय तक चलने देना चाहिए। ये नहीं कि महिने दो महीने कर लिया फिर छोड़ दिया या ये भी सोचते हैं इतने दिनों से भजन कर रहे हैं लेकिन हमें तो कोई लाभ नजर नहीं आता। इससे तो अच्छा है किसी देवी का अनुष्ठान करते तो बहुत कुछ लाभ मिलता। इस प्रकार के भाव, विचार कभी नहीं आने चाहिए। गुरु मंत्र पर पूरी श्रद्धा और विश्वास रखना बहुत जरूरी है। हमारे मन में कभी गुरुदेव के प्रति या उनके बताये मार्ग में कभी अश्रद्धा या अविश्वास नहीं होना चाहिए। गुरुदेव सबसे पहले हमारे जन्म-जन्मान्तरों के बुरे संस्कार को सबसे पहले काटते हैं। जिससे हम पाक साफ हो जाएं और आगे आध्यात्मिक जगत में हमारी उन्नति होती चली जाये। साधक को धैर्य के साथ लम्बे समय तक निरन्तर साधना करनी है। फिर देखिये तुम्हें क्या मिलता है। ये अनुभव की बात है आप अपनी साधना शुरु कीजिए केवल छः माह में ही आपको बहुत कुछ मिलेगा अनुभव अच्छे होने लगेंगे। सांसारिक और आध्यात्मिक लाभ भी मिलता जाएगा। ये प्रत्यक्ष प्रमाणिक बातें हैं। बस गुरुदेव भगवान को नमन करके अपने आपको साधना में लगा दो और अपना व अपने परिवार की जिम्मेवारी निभाने '। गुरुदेव भगवान पूरा सहयोग देते रहेंगे।

संत की सेवा

गुरु गोविन्दसिंह ने एक दिन किसी शिष्य से एक गिलास पानी माँगा। एक धनी आदमी के लड़के ने चमकते गिलास में पानी दिया। वह युवक सुन्दर था, उसके हाथ साफ थे किंतु गुरु ने पानी से भरा गिलास वापस कर दिया। र् .क ने बड़े आश्चर्य से गुरु की ओर देखा। महान् सद्गुरु ने कहा – नवजवान ! तुम्हारा गिलास चमक रहा है, तुम्हारी मुखाकृति सुन्दर है, तुम्हारे हाथ भी साफ-स्वच्छ हैं, लेकिन ये अब तक संत की सेवा नहीं कर सके हैं। पहले संत की सेवा के द्वारा अपने हाथ पवित्र करो। तुम्हारे हाथ विनम्रता और स्वाभाविक दैन्य से ही पवित्र होंगे। अहंकार का त्याग करो, दीन-दुखियों की सेवा में पवित्र हृदय और निष्काम भाव से लग जाओ। इसके बाद तुम मुझे पानी दोगे तो मैं उसे बड़ी प्रसन्नता से पी लूंगा, गिलास वापस नहीं होगा।

हमारा मन– कल्याणकर्ता तथा विनाशकर्ता

द्वारका प्रसाद शर्मा, लखनऊ

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान ने मन का स्थान–स्थान पर विवेचन किया है। मन को इन्द्रियों से श्रेष्ठ बताया है।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धि र्यो बुद्धेः परतस्तु सः।।

अर्थात् मनुष्य के शरीर से इन्द्रियां बलवान हैं। इन्द्रियों से बलवान मन का अस्तित्व है। मन से अधिक बलवान होती है बुद्धि, परंतु बुद्धि तत्व से परे है जिस तत्व का अस्तित्व वह है परम बलवान आत्म तत्व। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आत्मतत्व के अस्तित्व से ही शेष सभी तत्वों का अस्तित्व बना हुआ है। भगवद् वचनानुसार यह तो स्वत: स्पष्ट हो गया कि इन्द्रियां मन के अधीन हैं और उसी की अधीनता में अथवा मन की सहमति से ही वे अपने तत्वद् कार्य–व्यापार में प्रवृत्त हुआ करती हैं।

इसी प्रकार मनस्तत्व का श्रीमद्भगवद्गीता में अन्य अनेक स्थानों में भगवन्मुखारविन्द से गीता के श्लोकों में उल्लेख हुआ है। उदाहरणस्वरूप, श्लोकों को उद्धृत न करते हुए सुधी पाठकों की सुविधार्थ वर्णित अध्याय तथा उन–उन श्लोकों की संख्या को अंकित कर देना ही, विस्तारभय से, समीचीन व युक्तियुक्त होगा।

अध्याय सं	श्लोक सं	अध्याय सं	श्लोक सं
2	67	9	13
3	6		22
	7		34
	42	12	2
6	26		8
	34	15	14
	35		7
8	7	17	9
	8	18	16
	14		57
			65

उपर्युक्त अध्यायान्तर्गत श्लोकों में भी मनस्तत्व की प्रधानता का ही प्रतिपादन हुआ है। मन ही वह तत्व है जिसके द्वारा मनुष्यमात्र सद्विचार अथवा सन्मार्ग में प्रवृत्त होकर स्वयं का कल्याणकर्ता या विनाशकर्ता हो जाया करता है। महात्माओं, महापुरुषों के चरित्र का अध्ययन व मनन करने से सदैव इस तथ्य की सम्पुष्टि हुई है कि उन्होंने निज मन को ही सर्वप्रथम इन्द्रियवृन्द पर नियन्त्रण करके साधा और तत्पश्चात् ही वे शनैः-शनैः अन्य साधनों के समाश्रयण से सर्वोच्च अथवा परमपद के अधिकारी बन पाये।

हमारा मन ही हमारा परम हितकारी होता है और वही अन्यान्य भावों का समाश्रय ग्रहण करता हुआ दुःखकारी बन जाया करता है। मन को नियन्त्रण में रख हम इन्द्रियों के माध्यम से स्वाभीष्ट कार्यों की प्रतिपूर्ति कर स्वयं का व समाज का उत्थान कर सकते हैं।

मन के द्वारा ही हम राग-द्वेष, कामादि अन्य दोषजाल के पाश में निरन्तर आबद्ध होते रहते हैं। इसीलिए हमारे धर्मशास्त्र तथा सद्ग्रन्थों ने बार-बार इस ओर संकेत किया है कि सदैव सद्विचारवान व्यक्तियों के समागम में समय-यापन, सद्ग्रन्थों का नित्य नियमपूर्वक वाचन, भगवन्नाम का जपन व स्मरण हमें सदा शुभ विचारों तथा शुभकर्मों में प्रवृत्ति बनाये रखने में कारणभूत सुन्दर सोपान है। अतएव मन का निग्रह या नियन्त्रण पहली सीढ़ी है। महर्षि पतंजलि ने भी अष्टांग योग में प्रथमाङ्ग यम तथा नियम को ही वरीयता प्रदान की है।

कितना सुन्दर और यथार्थ बोधक श्लोक किसी मनीषी कवि ने लिखा है।

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणो,
गृहेषु पञ्चेन्द्रिय निग्रहस्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते,
निवृत्त रागस्य गृहं तपोवनम्।।

अर्थात् राग-दोष से युक्त व्यक्ति वन में वास करते भी इन दोषों से मुक्त नहीं रहता। घरों में रहकर भी पाँचों इन्द्रियों का निग्रह कर तपोयुक्त रहा जा सकता है। जो शुभकर्म के प्रति उन्मुख हैं उन रागरहित व्यक्तियों का गृह ही तपोवन है।

मन क्या है? मनीषियों ने इसका सम्यक् विवेचन करते हुए संकल्प और विकल्प करने वाले तत्व को 'मन' की संज्ञा से अभिहित किया है। वस्तुतः मन हमारे अन्दर क्षण-क्षण उठने वाले सकारात्मक तथा नकारात्मक विचारों का एक ताना-बाना ही तो है। मन के अनेक समानार्थवाची शब्द संस्कृत भाषा के अतिरिक्त इतर भाषाओं में भी प्रयोग में आते रहते हैं। उदाहरण स्वरूप, संस्कृत भाषा में चेतस्, चित्त, हृदय, हृत्, मानस और मन जहाँ प्रचलित व प्रयुक्त होते रहे हैं, वहीं, दिल "माइन्ड" आदि कुछ एक शब्द इसी अर्थ में भावों को प्रकट करते हैं। सामान्यतया मन वह तत्व हुआ जिससे हम किसी भी कार्य को करने से पूर्व उसकी एक रूप-रेखा मन के द्वारा कल्पित कर लिया करते हैं। यदि हम सद्विचार से प्रेरित होकर

किसी कर्म में प्रवृत्त होते हैं अथवा किसी कुविचार से ग्रसित हो किसी कुकृत्य को करने की ठान लेते हैं, वह सब मन का ही रचा–रचाया एक खेल कहा जाता है।

मन की इस व्याख्या से यह तो सिद्ध हो जाता है कि हम जिस किसी प्रकार से भी भाव से प्रेरित होकर कर्म करते हैं वह मन की ही उपज होती है और उस कार्य की निष्पन्नता होती है हमारी इन्द्रियों के माध्यम से। इससे स्वतः स्पष्ट है कि हम जैसा भी विचार मन में लायेंगे उसका प्रतिफल तदनुरूप हमें प्राप्त होगा।

हमारे ऋषि–मुनियों ने इसीलिए मन को एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया है। मन के द्वारा हम कठिन से कठिन कार्यों को भी सरलता से निष्पादित करने में सक्षम हो जाते हैं, यदि हमारा मन अविचल भाव से दृढ़ एवं बलवान् होता है। अन्यथा स्थिति में निर्बल मन वाले व्यक्ति एक सरलतम् कार्य को भी करने में सदैव अक्षम सिद्ध हुआ करते हैं।

हमारे पातञ्जलि योग शास्त्र में प्रथम सूत्र ही मन की बलवत्ता को इस सूत्र से सिद्ध करता है कि **''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः''**। अर्थात् चित्त की वृत्तियों (मन में उठने वाले विचारों) को निरुद्ध कर देना ही 'योग' कहलाता है। इसका सीधा अर्थ हुआ कि हम यदि मन को पहले नियंत्रित कर लेते हैं तो योग में प्रवेश पाने के अधिकारी हो जाते हैं। यहाँ इस लेख में यतः हमारा विवेच्य विषय मन है, अतः अपना ध्यान इसी मन पर केन्द्रित करते हुए हम योग की विशद् व्याख्या में ध्यान को विभक्त नहीं करना चाहेंगे।

वास्तव में यदि सूक्ष्म विश्लेषण किया जाए तो कहीं–कहीं तो हमारे इस मन को वह ऊँचा दर्जा दिया गया है जिसमें मन को ही आत्मतुल्य स्वीकारा गया है। शुक्लयजुर्वेद् में प्रथम अध्याय में मन को शिव–संकल्प धारण करने के लिए परमात्म तत्व से प्रार्थना की गई है। छः छन्दों में अन्तिम पद में **''तन्मेमनः शिव संकल्प मस्तु''**। अर्थात् मेरा यह मन सुन्दर व सत्य एवं मंगलमय विचारों वाला हो जाए। इससे स्वतः यह निष्कर्ष निकलता है कि मन वह शक्तिशाली तत्व है जिसका अवलम्ब लेकर हम कुछ भी कर पाने में समर्थ हो जाया करते हैं।

जहाँ तक मन की शक्तिशालिता का सम्बन्ध है मन का वेग अतुलनीय है। यदि हम बैठे–बैठे मन से संकल्प कर लेते हैं तो हम हजारों मील की दूरी पर स्थित किसी भी नगर या स्थान विशेष में अपनी विद्यमानता प्रकट कर लेते हैं। जहाँ तक सिद्धसंकल्प योगियों व सन्यासियों की बात है वे इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। एक सिद्ध योगी अपने मन की शक्ति से ऐसा कर दिखाने में सर्वथा समर्थ पाये गये हैं और सुने जाते रहे हैं इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे प्रभु श्री रामलाल जी तथा सद्गुरुदेव महाराज हमारे समक्ष हैं।

भगवान् महावीर हनुमान जी की हम जिस प्रचलित श्लोक से स्तुति करते हैं प्रतिदिन वह भी मन की वेगवत्ता को ही प्रकट व सिद्ध करता है। वह प्रचलित श्लोक है **''मनोजवं मारुततुल्य वेगं.....''** इससे भी मन की अतुलनीय वेगवत्ता जहाँ सिद्ध होती है वहीं मन के

द्वारा दृढ़ इच्छा शक्ति के बल पर किन कार्यों का सम्पादन नहीं किया जा सकता। इसीलिए मन को बन्धन और मोक्ष का भी मूल कारण हमारे मनीषियों ने यह कहकर सिद्ध किया है कि 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:'। अर्थात् मनुष्य अपने अन्तर्हित भावों के द्वारा ही संसार के इस जालपाश में बंध जाता है और इसी मन के द्वारा ही मोक्ष प्राप्ति द्वारा अपना उद्धार भी स्वयमेव कर सकता है।

किसी भी कार्य को मन की एकाग्रता से किए जाने पर सफलता अवश्यम्भावी है अन्यथा स्थिति में वही संदिग्ध रहती है। योगयोगेश्वर भगवान श्री कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में 'योग: कर्मसु कौशलम्' का इसीलिए प्रतिपादन किया है कि हम योगयुक्त एकाग्र मन से कार्य व्यवहार में दक्षता प्राप्त कर योगमार्ग पर आरूढ़ हो जाते हैं। सच्चे मन से, निरन्तर अभ्यास द्वारा निष्कभाव से किया गया कोई भी कार्य सदैव सुफलदायक तथा सफलताप्रद होगा ही इसमें लेशमात्र भी सन्देह शेष नहीं रह जाता।

हमारा मन तभी हमारा मन होता है जब वह हमारे वशीभूत हो अन्यथा मन के वशीभूत होकर हम मन की निरन्तर चलायमान वृत्तियों से प्रताड़िता तथा पीड़ित होकर दु:ख का भाजन ही बने रहेंगे। इसके लिए हमें योग मार्ग से इतर अन्य कोई मार्ग आज के सन्दर्भ में समीचीन तथा हितकारी नहीं प्रतीत होता है। इसीलिए मन को नियंत्रित करते हुए हमें अपने जीवन–पथ पर सदैव अग्रसर रहना चाहिए। जनभाषा की यह सूक्ति कितनी यथार्थ है– **मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।**

वीतरागी महापुरुषों में अथवा भगवान् कृष्णादि इष्टों में मन–बुद्धि लय हो जाने पर वे लोग जिस स्थिति में रहा करते हैं, उसी स्थिति में साधक रहने लगता है। क्योंकि उनका प्रकृति एवं अविद्यादि क्लेशों से कोई सम्बन्ध नहीं होता, अत: साधक के भी अविद्यादि क्लेश नष्ट हो जाते हैं। इसलिए अन्तर्जगत में प्रवेश करने का प्रयत्न करो। जो पवित्र योगमार्ग में चलने लगेगा, सर्वशक्तिमान् श्री प्रभुजी उसकी सब प्रकार से सहायता करेंगे। जो थोड़ा भी अन्तर्जगत में प्रवेश पा जाता है, उसको अगला मनुष्य जीवन मिलने में कोई कठिनाई नहीं। उसे अवश्य–अवश्य ही मनुष्य जीवन मिलेगा ही मिलेगा।

भौतिक भोग के इस युग में योग का अवलम्बन ही करेगा आपका कल्याण

उत्तम और सफल जीवन की
एकमात्र विश्वसनीय कुंजी है योग !

योग-पथ पर बढ़ने हेतु सिद्धयोग की शरण लीजिए

सिद्धयोग

पढ़िये-
पढ़ाइये !

योग सिद्धान्तों
और
शिक्षाओं का
प्रतिपादक
मासिक-पत्र

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2009-11 JULY 2009

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

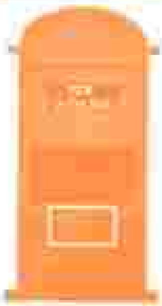

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर मेल आवरण (स्थान बचाने) का विज्ञापन
2. लैटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (पर्यावरणहित)
3. मेल वाहनों पर स्थान का प्रायोजन (मोबाइल) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेन्टिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 8.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर [illegible] लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पर्दों पर [illegible] लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति [illegible] कार्ड का मुद्रण दर 600/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड की सहायता से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पादों का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

श्री सिद्धगुरु योग प्रशिक्षण केन्द्र

सर्वाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री

संस्थापक :- योगयोगेश्वर जगद्गुरु श्री [illegible] जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. [illegible] शर्मा के लिए राष्ट्रीय ऑफसेट एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सर्वाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14586. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) [illegible] शर्मा